ॐ

# परीक्षामुख

( न्याय-शास्त्र )

लेखक व प्रकाशक—

घनश्यामदास, जैन ।

श्रीवीतरागायनमः ।

श्रीमन्माणिक्यनन्दिस्वामिविरचित—

# परीक्षामुख

का

# भाषा-अनुवाद ।

लेखक व प्रकाशक—

महरौनी ( झाँसी ) निवासी घनश्यामदास जैन, धर्माध्यापक स्याद्वाद महाविद्यालय, काशी ।

प्रथमावृत्ति ] श्रीवीर नि० सं० २४४१ [ मूल्य ।=) आना

## समर्पण।

यह पुस्तक, बमराना ( झाँसी ) निवासी उदाराशय, श्रीमान् सेठ लक्ष्मीचन्द्रजी रईसके कर-कमलोंमें-उनके अनेक उपकारोंसे आभारी हो, लेखक द्वारा सादर समर्पित हुई।

विनीत—

लेखक।

# भूमिका ।

इस संसार चक्रमें अनेक मत प्रचलित हैं और वे सबही अपने आपको सत्पथगामी बताते हैं-मोक्षमार्गी कहते हैं, और यह भी कहते हैं कि हमारे मार्ग पर चलनेसे ही अभीष्ट फल लाभ होसकता है। ऐसी अवस्थामें किसी भोले जिज्ञासु को, सच्चेमार्गको खोज करनेमें बड़ो भारी अड़चनें आ पड़ती हैं जिससे वह बेचारा आत्मकल्याणसे वञ्चितही रह जाता है और दुःखमय संसार चक्रमें चक्कर लगाया करता है। परन्तु आचार्योंने जो परीक्षाके लिए प्रमाणरूपी कसौटी तैयारकी है यदि उससे जाँचकर सच्चे पदार्थोंका निर्णय कियाजाय; तो हम दावेके साथ कह सकते हैं कि कोई भी पुरुष भ्रान्त नहीं होसकता—झूंठ मार्गमें नहीं फँस सकता; क्योंकि जैसे तराजू से तुले हुए किसी पदार्थमें सन्देह नहीं रहता है या यों कहिए कि कसौटी पर घिसकर जांचे हुए सुवर्णमें कोई सन्देह नहीं रहता है; वैसेही प्रमाण द्वारा निर्णीत पदार्थोंमें भी सन्देह नहीं रहता है। सो ही उमास्वामी महाराजने कहा है किः—प्रमाणनयैरधिगमः। जिन पदार्थोंके श्रद्धान, ज्ञान और आचरणको मोक्षमार्ग कहते हैं उन पदार्थोंका निर्णय करना सत्पथगामिओंको अत्यावश्यक है। वे पदार्थ, जीव, अजीव, बंध और मोक्ष हैं। परन्तु जिन भाइयों को संस्कृतका ज्ञान नहीं है वे संस्कृतके ग्रन्थोंसे प्रमाणके स्वरूपको नहीं जान सकते हैं और प्रमाणको बिना जाने मोक्षमार्गके विषयभूत पदार्थोंका निर्णय भी नहीं कर सकते हैं। इस विचारसे-कि केवल, भाषाको जाननेवाले भी प्रमाणके स्वरूपको सुगमतासे समझ सकें और पदार्थोंका निर्णय कर सत्पथगामी बनसकें।

प्रेरित होकर, हमने इस परीक्षामुख नामक महान् ग्रन्थके मूलसूत्रोंकी पहले सामान्यभाषा और नीचे विशेष भावार्थ लिखा है जिससे विद्यार्थीगण भी लाभ उठा सकते हैं। इस ग्रन्थमें प्रमाणके स्वरूप, संख्या, विषय और फल, इन चार बातोंका निर्णय किया गया है। इस ग्रन्थमें छै अध्याय हैं जिनमेंसे पांच अध्यायोंमें ऊपर कहे हुए चार विषयोंका निरूपण है और अन्तमें छटे अध्यायमें उन सबके आभासोंका वर्णन है। वे अध्याय, प्रमाणस्वरूप, प्रत्यक्ष, परोक्ष, विषय, फल और आभास, इसप्रकार हैं। फिर एक छन्दमें ग्रन्थकारने अपने इस ग्रन्थको दर्पणकी उपमा दिखाई है, वह इसलिए कि इस ग्रन्थसे प्रत्येक मनुष्य पदार्थोंकी हेयता और उपादेयताको उसीतरह जान सकता है, जिस तरह दर्पणसे अपने मुखके सौंदर्य्य और वैरूप्यको जान लेता है। इस अमूल्य ग्रन्थके कर्ता श्रीमाणिक्यनन्दि नामक आचार्य हैं। इनका सविस्तर जीवनचरित्र कहींसे उपलब्ध नहीं हुआ; परन्तु वीर नि. संवत् २४३९ के अषाढ़मासके जैन हितैषीके नवम अंकसे यह मालूम हुआ है कि यह आचार्य इस्वी सन् ८०० में विद्यमान थे और इसी समयके लगभग अकलंकदेवादि और और आचार्योंने भी ख्याति लाभ की थी। इन्होंने अकलंकदेवके रचे हुए ग्रन्थोंका अनुमनन करके इन थोड़ेसे सूत्रोंमें न्यायके मूलसिद्धान्तोंका ग्रथन किया है, यह बात अनन्तवीर्य आचार्यकी बनाई हुई प्रमेयरत्नमाला नामकी टीकाके निम्नश्लोकसे विदित होती है।

**अकलंकवचोऽम्भोधेरुदध्रे येन धीमता।**
**न्यायविद्यामृतं तस्मै नमो माणिक्यनन्दिने ॥१॥**

यह ग्रन्थ इतना गंभीर है कि इसका महात्म्य ही नहीं कहा जासकता है। इस ग्रन्थ पर श्रीप्रभाचन्द्र आचार्यकी

बनाई हुई १२०० श्रीप्रमेयकमलमार्तण्ड नामकी टीका है और श्रीअनन्तवीर्यकी बनाई हुई श्रीप्रमेयरत्नमाला नामकी टीका है।

इस अनुवादके विषयमें हमारा यही नम्र निवेदन है कि इस अनुवादको लिखते समय शब्दार्थ और भावार्थ पर विशेष लक्ष्य दिया गया है और साथ में यह भी प्रयत्न किया गया है कि भाषा सरल हो, फिर भी कहीं कहीं कोई कठिन शब्द आ-गया है उसके लिए पाठकोंको आगे पीछे देख लेना चाहिए। मैं नहीं कह सकता हूं कि इसके लिखनेमें मैंने कहां तक सफ-लता प्राप्तकी है इसका निर्णय करना पाठकोंके ऊपर ही निर्भर है, यदि वाचकोंने इसे अपनाया और इससे कुछ भी लाभ उठाया तथा मुझे कुछ भी उत्साह दिया; तो मैं फिर भी उनकी सेवा करनेका साहस करूंगा और अपना सौभाग्य समझूंगा।

इस ग्रन्थके लिखनेमें हमारे मित्रोंने हमें बहुत उत्साह दिया है इसलिये हम उनका बड़ा भारी आभार मानते हैं और उनकी सेवामें धन्यवाद भेट करते हैं। अन्तमें हम श्रीयुक्त पं० उमरावसिंहजी सा० को विशेष धन्यवाद देते है; क्योंकि आपने हमारे पूर्ण उत्साहको बढ़ाया है। इत्यलम्।

वैशाख शुक्ल ३
संवत् १९७२
काशी।

घनश्यामदास.

☞ पुस्तक मिलने के पते :—

(१) घनश्यामदास जैन,
स्याद्वाद महाविद्यालय, काशी।

(२) बंशीधर जैन, मास्टर
बुढ़वार ( ललितपुर )

॥ श्री जिनाय नमः ॥

# ॥ परीक्षामुख भाषा-अर्थ सहित ॥

## वा

## जैनियों का मूल न्याय सिद्धान्त ।

---

### ग्रन्थकार की प्रतिज्ञा तथा प्रयोजन ।

**प्रमाणादर्थसंसिद्धिस्तदाभासाद्विपर्ययः ।**
**इति वक्ष्ये तयोर्लक्ष्म सिद्धमल्पं लघीयसः ॥१॥**

**भाषार्थ**—प्रमाण ( सच्चे ज्ञान )' से पदार्थों का निर्णय होता है, और प्रमाणाभास( झूंठे ज्ञान )' से पदार्थों का निर्णय नहीं होता ; इस लिये मन्दबुद्धिवाले बालकों के हितार्थ. उन दोनों का लक्षण थोड़े शब्दों में, जैसा कि पूर्व महर्षियों ने कहा है; कहता हूँ ।

अब प्रमाण के स्वरूप का निर्णय करते हैं ।

### प्रमाण का लक्षण ।

**स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम् ॥१॥**

**भाषार्थ**—अपने तथा अपूर्वार्थ के निश्चय करने वाले ज्ञान को प्रमाण कहते हैं ।

**भावार्थ**—वही ज्ञान सच्चा है, प्रमाण है, जो अपने आप को जानता है, और अन्य पदार्थों को जानता है; अर्थात् जो अपने स्वरूप का, तथा पर पदार्थों के स्वरूप का निर्णय करता है, वही सच्चा ज्ञान है।

अब ज्ञान का प्रमाणपना सिद्ध करते हैं:—

**हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत् ॥ २ ॥**

**भाषार्थ**—जब कि, जो सुखकी प्राप्ति तथा दुख के दूर करने में समर्थ होता है, उसीको प्रमाण कहते हैं; तब वह प्रमाण ज्ञानही होसकता है। अन्य सन्निकर्ष आदिक नहीं।

**भावार्थ**—सन्निकर्ष—इन्द्रिय और पदार्थों का सम्बन्ध अचेतन होता है. और जड़ (अचेतन) से सुख की प्राप्ति तथा दुःख का परिहार होता नहीं। इस कारण सन्निकर्ष प्रमाण नहीं हो सकता है, और ज्ञान से ये बातें होती हैं; इस लिए वह प्रमाण माना गया है।

वह प्रमाण निश्चयात्मक ही होता है:—

**तन्निश्चयात्मकं समारोपविरुद्धत्वादनुमानवत् ॥३॥**

**भाषार्थ**—वह प्रमाण निश्चयात्मक, अर्थात् स्व और पर का निश्चय करनेवाला होता है; क्योंकि वह समारोप (संशय, विपर्यय तथा अनध्यवसाय) से रहित होता है, जैसे अनुमान प्रमाण।

**भावार्थ**—बौद्ध अनुमान को पदार्थों को निश्चय करने वाला मानता है, और प्रत्यक्ष को निर्विकल्पक अर्थात् निश्चय रहित मानता है; परन्तु जैनियों ने सब ही प्रमाण अपने तथा पर के निश्चय करने वाले माने हैं। बस, यही दिखलाने को उन्हीं के माने हुए अनुमान का दृष्टान्त दिया है, और सब प्रमाणों को निश्चयात्मक सिद्ध कर दिया है। जो किसी पदार्थ का तथा अपना निर्णय निश्चय रूप से नहीं करेगा, वह किस हैसियत से प्रमाण हो सकता है। विरुद्ध अनेक कोटियों को विषय करने वाले ज्ञान को संशय कहते हैं, जैसे यह बगुला है अथवा पताका। विपरीत पदार्थ के जानने वाले ज्ञानको विपर्यय कहते हैं, जैसे सीप में चांदी का ज्ञान होना। रास्ते में जाते हुए तृण स्पर्श वगैरह के ज्ञान को अनध्यवसाय कहते हैं, जैसे कुछ है यह ज्ञान। देखिये, यह तीनों इसी लिए प्रमाण नहीं माने जाते; कि ये अपने विषय का निश्चय नहीं करते हैं।

## अब अपूर्वार्थ का समर्थन करते हैं।

## अनिश्चितोऽपूर्वार्थः ॥ ४ ॥

**भाषार्थ**—जिस पदार्थ का पहले कभी किसी सच्चे ज्ञान से निर्णय नहीं हुआ है, उसको अपूर्वार्थ ऐसी संज्ञा दी जाती है, अर्थात् उसी को अपूर्वार्थ कहते हैं।

**भावार्थ**—जो ज्ञान जाने हुए पदार्थ को जानता है, वह प्रमाण नहीं होता, क्योंकि उसने पदार्थ का निश्चय ही नहीं किया; किन्तु निश्चित ही को जाना है।

परन्तु यह भी एकान्त नहीं है:—

**दृष्टोऽपि समारोपात्ताद्दक् ॥ ५ ॥**

**भाषार्थ**—जो पदार्थ पहले किसी प्रमाण से निश्चित हो चुका है, उस में यदि संशय आदि कोई एक भी झूंठा ज्ञान होजाय, तो वह भी अपूर्वार्थ कहा जायगा, और उसका जाननेवाला ज्ञान भी प्रमाण स्वरूप होगा।

अब स्व-व्यवसाय का समर्थन करते हैं:—

**स्वोन्मुखतया प्रतिभासनं स्वस्य व्यवसायः ॥ ६ ॥**

**भाषार्थ**—अपने आप के अनुभव से होने वाले प्रतिभास को स्वव्यवसाय अर्थात् स्वरूप का निश्चय कहते हैं।

**भावार्थ**—जब आत्मा किसी पदार्थ के जानने को व्यापार करता है तब "मैं उसको जानता हूँ" ऐसी प्रतीति होती है। बस, उस प्रतीति में "मैं" शब्द करके स्वरूप की ही प्रतीति होती है।

इसी को दृष्टान्त से पुष्ट करते हैं:—

**अर्थस्येव तदुन्मुखतया ॥ ७ ॥**

**भाषार्थ**—जिस तरह अर्थ के अनुभव से पदार्थ का प्रतिभास होता है, उसी तरह स्व के अनुभव से स्वव्यवसाय होता है।

**भावार्थ**—इन सात सूत्रों में केवल इतनाही वर्णन हुआ है कि जो ज्ञान अपने और अन्य पदार्थों के स्वरूप का निश्चय करने वाला होता है, वही सच्चा ज्ञान अर्थात् प्रमाण है, ऐसाही न्यायदीपिका में लिखा है कि-"सम्यग्ज्ञानं प्रमाणम्" अर्थात् सच्चे ज्ञान

( स्व तथा अपूर्वार्थ के निश्चय करने वाले ज्ञान ) को प्रमाण कहते हैं ; और नहीं निश्चय करने वाले संशय, विपर्यय तथा अनध्यवसाय को अप्रमाण कहते हैं ।

**किसी पदार्थ के जानने के समय ऐसी प्रतीति होती है:—**

**घटमहमात्मना वेद्मि ॥ ८ ॥**

**भाषार्थ**—मैं ( कर्ता ) घट को ( कर्म ) ज्ञान से ( करण ) जानता हूँ ( क्रिया )

**भावार्थ**—सर्वत्र ज्ञान के समय चार बातों की प्रतीति होती है, जिनमें "मैं" करके अपनी प्रतीति होती है इसी को ज्ञान के स्वरूप का निश्चय कहते हैं; क्योंकि यह आत्मा की प्रतीति है, और वह आत्मा ज्ञानस्वरूप है। इस कारण "मैं" करके ज्ञान अपने आप को जानता है । और " घट को " इस करके अपूर्वार्थ की प्रतीति होती है तथा "जानता हूँ" यह क्रिया की प्रतीति है, जिसको प्रमिति, अज्ञान की निर्वृत्ति, तथा ज्ञप्ति, वा प्रमाण का फल, भी कहते हैं । और " ज्ञान से " इस करके करण रूप प्रमाण की प्रतीति होती है, जिसका फल अज्ञान को दूर करना है ।

जो लोग केवल कर्म की प्रतीति मानते हैं, तथा कर्ता कर्म और क्रिया की प्रतीति मानते हैं उनके लिए आचार्य कहते हैं।

**कर्मवत्कर्तृकरणक्रियाप्रतीतेः ॥ ९ ॥**

**भाषार्थ**—कर्म की भांति कर्ता, करण तथा क्रिया की भी

प्रतीति होती है, जिसको ऊपर के सूत्र से जान लेना चाहिये।

**भावार्थ**—सर्वत्र पदार्थों का निर्णय प्रतीति से होता है, अर्थात् जिस पदार्थ की जैसी प्रतीति होती है, उसका वैसा ही स्वरूप माना जाता है। यदि ऐसा नहीं माना जाय; तो कभी पदार्थों का निर्णय ही न होगा। बस, कहने का तात्पर्य यह है; कि जब हम किसी पदार्थ को जानते हैं, तब इस सूत्र में दिखाई गई चार बातों की प्रतीति होती है।

**जो लोग इन चार बातों की प्रतीति को केवल शब्दादिक अर्थात् शब्द मात्र से होने वाली मानते हैं, उनके लिए आचार्य कहते हैं:—**

**शब्दानुच्चारणेऽपि स्वस्यानुभवनमर्थवत् ॥१०॥**

**भाषार्थ**—शब्द को विना कहे भी अपनी–प्रतीति, अपने स्वरूप की प्रतीति, होती है; जिस तरह कि घट आदि शब्दों के विना उच्चारण किये ही घट आदि पदार्थों की प्रतीति होती है।

**भावार्थ**—"मैं" इस प्रकार अपने स्वरूप का बोधक शब्द न बोला जाय तब भी अपने आत्मा की प्रतीति होती है; जिस प्रकार कि घट शब्द को बोले विना भी घट की। यदि केवल यह प्रतीति शाब्दिक ही होती, तो शब्द के अभाव में कभी न होती; परन्तु होती है। इससे सिद्ध होता है, कि यह प्रतीति शाब्दिक अर्थात् शब्द मात्र से ही होने वाली नहीं है।

**उसी को आचार्य, कुछ कौतुक करते हुए पुष्ट करते हैं:—**

**को वा तत्प्रतिभासिनमर्थमध्यक्षमिच्छँस्तदेव तथा नेच्छेत् ॥ ११ ॥**

**भाषार्थ**—लौकिक अथवा परीक्षक कौन ऐसा पुरुष है जो ज्ञान से प्रतिभासित हुए पदार्थों को तो प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय माने, परन्तु स्वय ज्ञान को प्रत्यक्ष न माने, अर्थात् सर्व ही मानेंगे, कि जब ज्ञान दूसरों का प्रत्यक्ष करता है तो अपना भी करता होगा। यदि अपने को न जानता होता, तो दूसरे पदार्थों को भी न जान सकता, जैसे घट वग़ैरह अपने को नहीं जानते, इसी लिए दूसरों को भी नहीं जानते हैं।

**भावार्थ**—जो यह कहेगा, कि मैं घट का प्रत्यक्ष कर रहा हूँ। उसको "मैं" इस शब्द के वाच्य ज्ञान का भी प्रत्यक्ष मानना ही पड़ेगा।

## इसी को दृष्टान्त से पुष्ट करते हैं:—

**प्रदीपवत्॥ १२॥**

**भाषार्थ**—जैसे दीपक घट पट आदि दूसरे पदार्थों को प्रकाशित करता हुआ अपने आप (दीपक) को भी प्रकाशित करता है, वैसे ही ज्ञान, घट पट आदि को जानता हुआ अपने आप (ज्ञान) को भी जानता है।

**भावार्थ**—यदि दीपक अपने आप को प्रकाशित न करता; तो घट पट के प्रकाशक दीपक के ढूँढ़ने के लिए दूसरे दीपक की आवश्यकता होती; परन्तु होती नहीं है। इस से सिद्ध होता है कि दीपक स्व और पर का प्रकाशक है, इसी प्रकार ज्ञान भी स्व और पर का प्रकाशक है। इसमें कोई सन्देह नहीं है, क्योंकि सर्वत्र दृष्ट पदार्थों से ही अदृष्ट पदार्थों की कल्पना की जाती है।

उस प्रमाण के प्रामाण्य का निर्णय करते हैं:—

**तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च ॥ १३ ॥**

**भाषार्थ**—उस प्रमाण (सच्चे ज्ञान) के प्रामाण्य अर्थात् वास्तविकपने (जैसा पदार्थ है उसको वैसाही जानने) का दो प्रकार से निर्णय होता है। अर्थात् अभ्यास दशा में अपने आप (किसी अन्य पदार्थ की सहायताविना) ही निर्णय हो जाता है, और अनभ्यास दशा में अन्य कारणों की सहायता से निर्णय होता है।

**भावार्थ**—जहां निरन्तर जाया आया करते हैं वहा के नदी तालाब आदि स्थान परिचित होजाते हैं, इसी को अभ्यास दशा कहते है। बस, उस जगह स्वतः ही प्रामाण्य का निर्णय (जानपना) होजाता है, और जहाँ कभी गये आये नहीं, वहाँ के नदी तालाब आदि परिचित नहीं होते हैं, इसको अनभ्यास दशा कहते हैं बस, ऐसी हालत में दूसरे कारणों से ही प्रामाण्य का निर्णय होता है।

इसी को दृष्टान्त से पुष्ट करते हैं। कोई पुरुष निरन्तर ही शिवपुर जाया करता है, और वहां के रास्ते में जितने कूप, तड़ाग वगैरह आते हैं. सब को भली भांति जानता है। फिर वह जब २ जाता है तब २ पूर्व के परिचित चिन्हों को देखते ही जान लेता है कि यहां जल है, और उन्हीं चिन्हों से यह भी जान लेता है, कि मुझे जो ज्ञान हुआ है वह बिल्कुल ही ठीक है। इसमें यही प्रमाण है; कि वह ज्ञान होने के बाद ही शीघ्रता से कुएँ में या तालाब में लोटा डोबने लग जाता है। अगर उसे अपने ज्ञान की सचाई नहीं होती तो कभी ऐसा नहीं कर सकता था; इससे मालूम होता है कि अभ्यास दशा में स्वतः ही प्रामाण्य का निर्णय

होता है । और एक दूसरा पुरुष पहले ही शिवपुर गया, और रास्ते में जैसे अन्य जलाशयों पर चिन्ह होते हैं, वैसे चिन्ह देखे । तब उसे यह ज्ञात हुआ कि यहां जल है; परन्तु यह निर्णय नहीं कर सका; कि किस ख़ास स्थान पर है अर्थात् दस गज़ इस तरफ़ है या उस तरफ़ । इसके बाद जब वह देखता है, कि अमुकी ओर से स्त्रियाँ पानी लिए आ रही हैं, अथवा कोई सुगन्धि वायु आ रहा है । तब वह कहता है कि यह मेरा जल-ज्ञान सच्चा है यदि सच्चा न होता; तो ये स्त्रियाँ जल लेने को भी नहीं आतीं । फिर वह दस गज़ जाकर कुएँ में लोटा डोब कर पानी भर लेता है । पाठको ! उसका पहला ज्ञान यद्यपि सच्चा था, परन्तु उस सचाई का निर्णय दूसरे ही कारणों से हुआ । इससे मालूम होता है कि अनभ्यास दशा में परतः प्रामाण्य का निर्णय होता है ।

## प्रथम परिच्छेद का सारांश ।

सम्पूर्ण ज्ञान स्व तथा पर के जानने वाले होते हैं अर्थात् अपने स्वरूप तथा पर, घट पट आदिक पदार्थों के, स्वरूप के निश्चय करने वाले होते हैं । तब ही उनमें सच्चापना आता है अर्थात् इसी कारण से वह प्रमाण कहे जाते हैं, और जिनमें स्व और पर पदार्थों के निश्चय करने की सामर्थ्य नहीं हैं, वे ज्ञान सच्चे अर्थात् प्रमाण नहीं होते हैं, जैसे संशयज्ञान, विपर्ययज्ञान और अनध्यवसाय । इन का स्वरूप पहले कहा जा चुका है । और इसी कारण से सन्निकर्ष तथा इन्द्रियव्यापार आदिक प्रमाण नहीं हो सकते हैं; क्योंकि वे जड़ हैं अर्थात् चेतना रहित हैं; इस लिए जैसा घट, तैसे ही वे । दोनों में कोई भी फ़र्क नहीं है,

फिर जो सन्निकर्ष वगैरह को प्रमाण मानते हैं, उनको घट भी प्रमाण ही मानना पड़ेगा । परन्तु ऐसा वे मानते नहीं हैं ; इस लिए सन्निकर्ष को भी घट की तरह अप्रमाण मानना पड़ेगा। दूसरी बात यह है. कि सन्निकर्ष वगैरह जड़ पदार्थों से जीवों के इष्ट की सिद्धि तथा अनिष्ट का परिहार नहीं हो सकता ; इस कारण से भी वे प्रमाण नहीं है । यह बात निर्विवाद सिद्ध है, कि सब जीव हित की प्राप्ति और अहित के परिहार के लिए ही प्रमाण को खोजते हैं। इससे सिद्ध हुआ, कि ज्ञान ही प्रमाण होता है अन्य नहीं । वह ज्ञान जिस पदार्थ को जानता है वह ऐसा होना चाहिए जिसको कि पहले किसी सच्चे ज्ञान ने नहीं जाना हो, और अगर जाना भी हो, तो उसके बाद किसी झूठे ज्ञान ने फिर भ्रम कर दिया हो, उस पदार्थ का नाम है अपूर्वार्थ, और उसके जानने वाले ज्ञान का नाम होता है सच्चा ज्ञान, अथवा प्रमाण। उस ज्ञान में अपूर्वार्थ जानने के समय केवल अपूर्वार्थ का ही प्रतिभास नहीं होता; किन्तु अपने आप का भी होता है, इस लिए ही वास्तविक में वह सच्चा है कि अपने को जानता है, और पर को भी जानता है; क्योंकि जो अपने आपही अन्धा है वह दूसरे पुरुष को रास्ता नहीं बतला सकता है, और यदि बतलावेगा तो उल्टा मार्गही बतलावेगा, जिससे वेचारा पथिक मारा मारा फिरेगा। ठीक इसी प्रकार जो ज्ञान अपने आपको नहीं जानता, वह दूसरे पदार्थ को निश्चित नहीं जान सकता है, और यदि जानेगा तो संशय आदि की तरह उल्टा ही जानेगा, जिस से ज्ञाता को लाभ के बदले हानि उठानी पड़ेगी । इस बात को दीपक, रत्न, सूर्य, चन्द्रमा वगैरह दृष्टान्त भली भांति पुष्ट कर रहे हैं ; कि जो दूसरे का प्रकाशन करता है, वह अपना प्रकाशन तो करताही है; इस में हस्तक्षेप

करने की ज़रूरतही नहीं; कि वह अपने आप को नहीं जानता है।

कहने का तात्पर्य यह हैं, कि सब प्रमाण स्व तथा पर पदार्थों के स्वरूप के निश्चय करने वाले होते हैं। और इनका वास्तविक पना कहीं (अभ्यास दशा में) स्वतः ही निर्णीत होजाता है और कहीं (अनभ्यास दशा में) परतः निर्णीति होता है।

इस प्रकार प्रमाण के स्वरूप का सँक्षेप वर्णन किया।

इति प्रथमः परिच्छेदः।

---

## अब प्रमाण की संख्या का निर्णय करते हुए प्रत्यक्ष प्रमाण का निर्णय करते हैं:—

**तद्द्वेधा ॥ १ ॥**

**भाषार्थ**—उस प्रमाण के अर्थात् ऊपर के परिच्छेद से निर्णीत प्रमाण के, दो भेद हैं। जैसे:—

**प्रत्यक्षेतरभेदात् ॥ २ ॥**

**भाषार्थ**—प्रत्यक्ष, और इतर—परोक्ष।

### प्रत्यक्षप्रमाण का लक्षण।

**विशदं प्रत्यक्षम् ॥ ३ ॥**

**भाषार्थ**—निर्मल ( स्पष्ट ) ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं।

**भावार्थ**—प्रत्यक्ष प्रमाण की निर्मलता अनुभव से जानी जाती है। वह अनुभव इस प्रकार होता है। किसी पुरुष को उसके पिता ने अथवा किसी अन्य मनुष्य ने अग्नि का ज्ञान शब्दों से करवा दिया; तब उस पुरुष ने सामान्य रूप से अग्नि

को जाना। और उसके पश्चात् किसी मनुष्य ने धूम से अग्नि का ज्ञान करवाया, तब भी उस पुरुष ने जिस जगह पर धूम था उस जगह विशिष्ट बन्हि को जाना। इसके बाद किसी तीसरे मनुष्य ने अग्नि का जलता हुआ अंगार लाकर उसके सामने रख दिया, तब उस पुरुष को बिल्कुल निर्मल (स्पष्ट) ज्ञान हो गया, कि इस प्रकार, ऐसे रंग की, गर्म अग्नि होती है। बस, इस प्रत्यक्ष में पहले हुए दो ज्ञानों से जो विशेषता है उसी को निर्मलता कहते हैं, और जो ज्ञान निर्मल होता है उसी को प्रत्यक्ष कहते हैं।

इसी वैशद्य को आचार्य ने कहा है:—

**प्रतीत्यन्तराव्यवधानेन विशेषवत्तया वा प्रतिभासनं वैशद्यम् ॥ ४ ॥**

**भाषार्थ**—दूसरे ज्ञान की सहायता के विना होने वाले, तथा पदार्थों के आकार, वर्ण आदि की विशेषता से होने वाले, प्रतिभास को वैशद्य (विशदता) कहते हैं।

**भावार्थ**—जो ज्ञान अपने स्वरूप के लाभ करने में दूसरे ज्ञानों की सहायता चाहते हैं, वे ज्ञान परोक्ष कहे जाते हैं, जैसे स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान, तथा आगम। और जो दूसरे ज्ञानों की सहायता नहीं चाहते हैं, वे प्रत्यक्ष कहे जाते हैं, और उनमें जो ख़ासियत होती है उस को विशदता—वैशद्य, निर्मलता वा स्पष्टता कहते हैं।

उस प्रत्यक्ष के दो भेद हैं। एक सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष, दूसरा पारमार्थिक प्रत्यक्ष (मुख्यप्रत्यक्ष)।

## सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष के कारण और उसका लक्षण ।

**इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं देशतः सांव्यवहारिकम् ॥५॥**

**भाषार्थ**—इन्द्रियों की और मन की सहायता से होने वाले, एक देश विशद ( निर्मल ) ज्ञान को सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं ।

**भावार्थ**—यह प्रत्यक्ष मतिज्ञान का ही भेद है जिसका कि उमास्वामी महाराज ने "मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ता ऽभिनि बोध इत्यनर्थान्तरम्" इस सूत्र में पड़े हुए मति शब्द से उल्लेख किया है, इसके द्वारा प्रवृत्ति और निवृत्ति रूप व्यवहार चलता है; इस लिए इसको सांव्यवहारिक विशेषण दिया है । और थोड़ी निर्मलता लिए होता है, इस लिए इसको प्रत्यक्ष कहा है वस्तुतः यह परोक्ष ही है । क्योंकि, "आद्ये परोक्षम्" यह सूत्र कहता है कि मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान परोक्ष प्रमाण हैं ।

## जो लोग इन्द्रिय तथा अनिन्द्रिय की नाईं अर्थ और आलोक ( प्रकाश ) को भी ज्ञान का कारण मानते हैं, आचार्य उनका निषेध करते हैं:—

**नार्थालोकौ कारणं परिच्छेद्यत्वात्तमोवत् ॥६॥**

**भाषार्थ**—पदार्थ और प्रकाश ज्ञान के कारण नहीं है । क्योंकि वे ज्ञान के विषय हैं। जो २ ज्ञान का विषय होता है वह २ ज्ञान का कारण नहीं होता है । जैसे अन्धकार । यह ज्ञान का विषय तो होता है, क्योंकि सर्व ही कहते हैं कि यहां अन्धकार

है, परन्तु ज्ञान का कारण नहीं, उल्टा ज्ञान का प्रतिबन्धक है अर्थात् अन्धकार की वजह से घट पट का ज्ञान नहीं हो सकता, रुक जाता है।

**भावार्थ**—यदि पदार्थों को ज्ञान का कारण मानें, तो मौजूद पदार्थों का ही ज्ञान होगा। जो उत्पन्न नहीं हुए हैं अथवा नष्ट हो गए हैं, उनका ज्ञान नहीं होगा, क्योंकि जो है ही नहीं, वह कारण कैसे हो सकता है। और जो आलोक को कारण मानते हैं उन्हें रात्रि में कुछ भी ज्ञान नहीं होगा। यह भी नहीं कह सकेंगे, कि यहां अन्धकार है।

## उसी को दूसरी युक्तियों से सिद्ध करते हैं:—

**तदन्वयव्यतिरेकानुविधानाभावाच्च केशोण्डुक ज्ञानवन्नक्तंचरज्ञानवच्च ॥ ७ ॥**

**भाषार्थ**—अर्थ और आलोक ( प्रकाश ) ज्ञान के कारण नहीं हैं; क्योंकि ज्ञान का अर्थ, तथा प्रकाश के साथ अन्वय और व्यतिरेक नहीं है। जैसे केश में होनेवाले उण्डुक के ज्ञान के साथ, तथा रात्रि में होने वाले नक्तँचर उल्लू आदि के ज्ञान के साथ।

**भावार्थ**—अर्थ ज्ञान का कारण नहीं है; क्योंकि ज्ञान का अर्थ के साथ अन्वय तथा व्यतिरेक नहीं है जैसे केश में होने वाले उण्डुक के ज्ञान के साथ। सारांश यह है कि केश के होते हुए केश का ज्ञान होता, तो कह सकते थे कि अर्थ ज्ञान का कारण है, परन्तु ऐसा न होकर उल्टाही होता है, कि जो पदार्थ ( उण्डुक अर्थात् मच्छर ) है ही नहीं, उसका तो ज्ञान होता है और जो है (केश है) उसका ज्ञान नहीं होता है। इसी को अन्वय व्यतिरेक का

अभाव कहते हैं। क्योंकि कारण के होने पर कार्य के होने को अन्वय, तथा कारण के अभाव में कार्य के अभाव को व्यतिरेक कहते हैं। इस रीति के अनुसार केश होने पर केश का ज्ञान होना चाहिए था और उण्डुक के अभाव में उस के ज्ञान का अभाव होना चाहिए था सो नहीं होता; किंतु इसका उल्टा ही होता है। जिससे सिद्ध होता है कि अर्थ के साथ ज्ञान के अन्वय और व्यतिरेक दोनों ही नहीं हैं। इसलिए अर्थ ज्ञान का कारण नहीं है। इसी प्रकार आलोक भी ज्ञान का कारण नहीं है, क्योंकि ज्ञान का आलोक (प्रकाश) के साथ अन्वय व्यतिरेक नहीं है, जैसे नक्तँचर, उल्लू आदि के ज्ञान के साथ। सारांश यह है कि आलोक के होने पर उल्लू पक्षी को ज्ञान नहीं होता हैं और आलोक के नहीं होने पर भी रात्रि में ज्ञान होता है, इससे सिद्ध होता है कि आलोक ज्ञान का कारण नहीं है, अगर कारण होता, तो रात्रि में उल्लू को ज्ञान कभी न होता।

**बौद्ध लोग मानते हैं, कि जो ज्ञान जिस पदार्थ से उत्पन्न होता है, वह ज्ञान उसी पदार्थ को जानता है, उससे विपरीतही आचार्य कहते हैं:—**

**अतज्जन्यमपि तत्प्रकाशकं प्रदीपवत् ॥ ८ ॥**

**भाषार्थ**—ज्ञान यद्यपि पदार्थोंसे उत्पन्न नहीं होता है, तो भी पदार्थों का प्रकाशक अर्थात् जानने वाला होता है। जैसे दीपक घट पट आदिकसे उत्पन्न नहीं होता है. तो भी घट पट आदिक को प्रकाशित कर देता है।

**भावार्थ**—इसी प्रकार घट के आकार नहीं होकर भी

ज्ञान घट को जानता है, जैसे दीपक घट के आकार को नहीं धारण करके भी घट को प्रकाशित कर देता है।

जब कि ज्ञान किसी पदार्थ से नहीं उत्पन्न होकर भी पदार्थों को जानता है, तो एक ही ज्ञान सब पदार्थों को क्यों न जान ले, इसका निषेध करने वाला कौन है? हमारे (बौद्धों के) यहां तो जो ज्ञान जिस पदार्थ से उत्पन्न होगा, वह ज्ञान उसी पदार्थ को जानेगा, अन्य पदार्थों को नहीं; इस नियम से काम चल जाता है। इसके उत्तर में आचार्य कहते हैं:—

**स्वावरणक्षयोपशमलक्षणयोग्यतया हि प्रतिनियतमर्थं व्यवस्थापयति (प्रत्यक्षमिति शेषः) ॥ ९ ॥**

**भाषार्थ**—अपने आवरण कर्म के क्षयोपशम रूपी योग्यता से प्रत्यक्षप्रमाण, यह घट है, यह पट है, इस प्रकार पदार्थों की जुदी २ व्यवस्था कर देता है अर्थात् क्रम २ से जैसी २ योग्यता होती जाती है वैसे ही पदार्थों को जुदा २ करके विषय करता है।

**भावार्थ**—ज्ञान पर बहुत से आवरण कर्म चढे हुए हैं. फिर घटके ज्ञान को रोकने वाला, अथवा पट के ज्ञान को रोकने वाला, जौन सा आवरण कर्म हट जायगा, उसी पदार्थ को ज्ञान विषय कर लेगा दूसरे पदार्थों को नहीं। इससे सिद्ध हुआ कि स्वावरण क्षयोपशम से ज्ञान पदार्थों की जुदी २ क्रम से व्यवस्था करदेता है। फिर पदार्थों से ज्ञान उत्पन्न होता है यह मानने की कोई भी जरूरत नहीं। दूसरी बात यह है, कि नष्ट पदार्थों की व्यवस्थाकैसे होगी?

## और यह भी है कि:—

**कारणस्य च परिच्छेद्यत्वे करणादिना व्यभिचारः॥१०॥**

**भाषार्थ**—जो पदार्थ ज्ञान का कारण होता है वह ही ज्ञान का विषय होता है। यदि ऐसा माना जायेगा, तो इन्द्रियों के साथ व्यभिचार नाम का दोष हो जायगा; क्योंकि इन्द्रियाँ ज्ञान की कारण तो हैं परन्तु विषय नहीं हैं।

**भावार्थ**—बौद्धों का कहना है कि जो २ ज्ञान का कारण होता है वह २ ही ज्ञान का विषय होता है। इस अनुमान में "कारण होना" हेतु है और "विषय होना" साध्य है। अब देखिए, कि इन्द्रियों में हेतु तो रह गया; क्योंकि ये ज्ञान में कारण हैं; परन्तु साध्य "विषय होना,, नहीं रहा; क्योंकि ऐसा कोई पुरुष नहीं है जो अपनी इन्द्रियों से अपनी ही इन्द्रियों को जान लेवे। बस, हेतु रहकर साध्य के न रहने को ही व्यभिचार दोष कहते हैं, इस लिए ही ऊपर कहा है कि इन्द्रियों के साथ व्यभिचार नाम का दोष आवेगा।

## —पारमार्थिक ( मुख्य ) प्रत्यक्ष का स्वरूप।

**सामग्रीविशेषविश्लेषिताखिलावरणमतीन्द्रिय-मशेषतोमुख्यम्॥ ११॥**

**भाषार्थ**—द्रव्य, क्षेत्र, काल, तथा भाव रूप सामग्री की परिपूर्णता से दूर कर दिये हैं सर्व आवरण जिसने ऐसे तथा इन्द्रियों की सहायता रहित और पूर्णतया विशद, ज्ञान को मुख्य प्रत्यक्ष कहते हैं।

क्योंकि:-

**सावरणत्वे करणजन्यत्वे च प्रतिबन्धसंभवात् ॥१२॥**

**भाषार्थ**—आवरण सहित और इन्द्रियों की सहायता से उत्पन्न होनेवाले, ज्ञानका प्रतिबन्ध सम्भव है ।

**भावार्थ**—जिस ज्ञान पर आवरण चढा होता है तथा जो ज्ञान इन्द्रियों की सहायता से होता है, उस ज्ञान के मूर्त्त पदार्थ रोकने वाले हो जाते हैं, जैसे जब हम लोग अपने इन्द्रिय जन्य ज्ञान से किसी पदार्थ को जानना चाहते हैं, तो वहीं तक जान सकते हैं जहां तक कि, जानने की हमारी इन्द्रियों में ताक़त है अथवा वहीं तक जान सकते हैं जहां तक कि कोई दीवाल वग़ैरह रोकने वाला नहीं होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जिसका कोई भी रोकने वाला नहीं है वही ज्ञान मुख्य प्रत्यक्ष है ।

## द्वितीय परिच्छेद का सारांश ।

प्रमाण के दो भेद हैं एक प्रत्यक्ष, दूसरा परोक्ष । जिन में स्पष्ट ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं । परोक्ष का वर्णन तीसरे परिच्छेद में किया जायगा । उस प्रत्यक्ष के दो भेद हैं एक सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष, दूसरा मुख्य प्रत्यक्ष । जिन में इन्द्रियों की और मन की सहायता से होने वाले, थोड़े निर्मल ज्ञानको सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं; परन्तु ध्यान देने की बात है, कि जिस तरह इन्द्रियाँ और मन ज्ञान के कारण हैं अर्थात् ज्ञानके उत्पन्न होने में निमित्त कारण हैं, उस तरह आलोक तथा पदार्थ कारण नहीं है; क्योंकि कार्य कारण भाव उन्हीं पदार्थों में होता है, जिन में कि अन्वय व्यतिरेक घटते हों । जैसे कुम्भकार तो कारण है और घट कार्य है, इन

दोनों में कार्य कारण भाव इसी लिए है कि इन दोनों में अन्वय-व्यतिरेक घट जाते हैं। अर्थात् कुम्भकार की उपस्थिति में घट बनता है और उस की अनुपस्थिति में नहीं बनता है। यही अन्वय व्यतिरेक का लक्षण है कि कारण के होने पर तो कार्य का होना, और कारण के अभाव में कार्य का न होना। परन्तु इस प्रकार ज्ञान के अन्वय व्यतिरेक अर्थ और आलोक के साथ नहीं घटते हैं; क्योंकि अर्थ के अभाव में भी केश में उण्डुक ( मच्छर ) का ज्ञान हो जाता है और केश रूप अर्थ होने पर भी उसका ज्ञान नहीं होता है। इसी प्रकार आलोक के अभाव में भी उल्लू को रात्रि में ज्ञान होजाता है, और आलोक ( प्रकाश ) के होने पर भी दिन में ज्ञान नहीं होता है। बस, अन्वय-व्यतिरेक नहीं घटने से अर्थ और आलोक, ज्ञान के कारण नहीं हैं। यदि कोई कहे कि फिर ज्ञान पदार्थों को विषय कैसे करेगा; यह उनका कहना ठीक नहीं है, क्योंकि हम देखते हैं कि दीपक घट से उत्पन्न नहीं होता है फिर भी घट को प्रकाशित करता है, इसी प्रकार ज्ञान भी पदार्थों से नहीं उत्पन्न होकर पदार्थों को जानता है।

यदि फिर भी कोई कहे कि भिन्न २ विषय की व्यवस्था कैसे होगी? अर्थात् भिन्न २ ज्ञान, भिन्न २ पदार्थों को कैसे जानेंगे?

उनके लिये यह उत्तर है, कि जितनी, कर्म के क्षयोपशम से ज्ञान में योग्यता होगी, अथवा जैसी योग्यता होगी; वैसे ही वह पदार्थों को भिन्न २ (क्रम से) विषय कर लेगा। फिर कोई भी गड़ बड़ न होगी। एवं मुख्य प्रत्यक्ष उसको कहते हैं, जो इन्द्रियों की सहायता रहित तथा आवरण रहित, पूर्णतया निर्मल ज्ञान होता है। क्योंकि आवरण सहित और इन्द्रिय जन्य ज्ञान, मूर्त्त पदार्थों से रोक दिया जाता है; इस लिए वही मुख्य

प्रत्यक्ष हो सकता है; जिसका कोई प्रतिबन्धक न हो। इस प्रकार प्रत्यक्षप्रमाण का वर्णन किया।

इति द्वितीयः परिच्छेदः।

---

## अब परोक्ष प्रमाण का निर्णय करते हैं:—

**परोक्षमितरत् ॥ १ ॥**

**भाषार्थ—**"विशदं प्रत्यक्षम्" इस सूत्र कर कहे हुए प्रत्यक्ष प्रमाण के सिवाय सर्व प्रमाण ( स्मृति आदि ) परोक्ष हैं।

## परोक्ष प्रमाण के कारण और भेद।

**प्रत्यक्षादिनिमित्तं स्मृतिप्रत्यभिज्ञानतर्कानुमानागमभेदम् ॥ २ ॥**

**भाषार्थ—**परोक्ष प्रमाण के प्रत्यक्ष, स्मृति आदिक कारण हैं और स्मृति, प्रत्यभिज्ञान तर्क, अनुमान तथा आगम भेद हैं। तात्पर्य यह है कि परोक्ष प्रमाण के पांच भेद हैं। और वे परस्पर में कारण हैं तथा प्रत्यक्ष भी उनका कारण है।

**भावार्थ—**स्मरण, पहले अनुभव किए हुए पदार्थ का ही होता है जब कि वह अनुभव (प्रत्यक्ष) धारणा रूप हो। इस लिए स्मरण का प्रत्यक्ष निमित्त है। इसी प्रकार प्रत्यभिज्ञान में स्मरण और प्रत्यक्ष की ज़रूरत पड़ती है क्योंकि जिस पदार्थ को पहले देखा था, उसी को फिर देख कर "यह वही है जिसको मैंने पहले देखा था" ऐसा जो ज्ञान होता है उसीको प्रत्यभिज्ञान कहते हैं, इसमें स्मरण की और पुनर्दर्शन अर्थात् दूसरी दफ़े वाले प्रत्यक्ष की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार तर्क प्रमाण में तीनों की अर्थात्

प्रत्यक्ष, स्मरण तथा प्रत्यभिज्ञान की आवश्यकता होती है वह ऐसे होती है, एक पण्डितजी अपने शिष्य को साथ लेकर भ्रमणार्थ गए, वहां एक पहाड़ में धूम दीख पड़ा। तब पण्डितजी शिष्य से कहते हैं; कि देखो भाई तुम्हें याद है जो तुम अपने रसोई घर में रोज़ देखते हो, कि जब धूम होता है तब अवश्यही अग्नि होती है, यह सुनकर वह अपने रसोई घर वाले धूम और अग्नि का स्मरण करता है। और फिर कहता है क्यों पण्डित जी ! यह धूम उसी के सदृश है न ? तब पण्डित जी कहते हैं कि हाँ। अब देखिए, वहां पर उस शिष्य को पहले धूम का प्रत्यक्ष हुआ, पीछे स्मरण हुआ, और फिर सादृश्य प्रत्यभिज्ञान हुआ, इसके बाद वह निश्चय करक कहता है कि जब ऐसा है, तो जहां २ धूम होगा वहां २ अवश्य ही बन्हि होगी; क्योंकि बन्हि के विना धूम हो ही नहीं सकता है। बस, इसी को व्याप्तिज्ञान तथा तर्कप्रमाण कहते हैं, और इसमें उपर्युक्त तीन ज्ञानों की आवश्यकता होती है। इस तर्क प्रमाण के बाद वह शिष्य अनुमान करता है कि इस पर्वत में अग्नि है; क्योंकि यहां पर धूम है। बस, इस में तर्क सहित चार प्रमाण निमित्त होते हैं। आगम प्रमाण में, संकेत ग्रहण अर्थात् यह शब्द इस पदार्थ को कहता है इस प्रकार के संकेत का ग्रहण, और उसका स्मरण, यह दोनों ही कारण होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार इन पांचों ही प्रमाणों में दूसरे प्रमाणों की आवश्यकता होती है, इसी लिए ही इनको परोक्ष प्रमाण कहते हैं।

## स्मृति प्रमाण का लक्षण व कारण।

**संस्कारोद्बोधनिबन्धना तदित्याकारा स्मृतिः ॥३॥**

**भाषार्थ**—संस्कार ( धारणारूप अनुभव ) की प्रकटता से होने वाले, तथा 'तत्' ( वह ) इस आकार वाले, ज्ञान को स्मृति कहते हैं ।

**उसी को दृष्टान्त से दृढ़ करते हैं:—**

**स देवदत्तो यथा ॥ ४ ॥**

**भाषार्थ**—जैसे कि वह देवदत्त ।

**भावार्थ**—देवदत्त को पहले देखा और धारणा भी करली, उसके बाद फिर कभी उस धारणा के प्रकट होने पर ज्ञान होता है कि वह देवदत्त । बस, इसी को स्मरण कहते हैं ।

**प्रत्यभिज्ञान का स्वरूप व कारण ।**

**दर्शनस्मरणकारणकं संकलनं प्रत्यभिज्ञानम् । तदेवेदं तत्सदृशं तद्विलक्षणं तत्प्रतियोगीत्यादि॥५॥**

**भाषार्थ**—जो प्रत्यक्ष और स्मरणज्ञान से उत्पन्न होता है और जो एकत्व, सादृश्य तथा वैलक्षण्य आदि विवक्षित धर्मों से युक्त वस्तु को ग्रहण करता है, उस ज्ञान को प्रत्यभिज्ञान कहते हैं, और जब जिस धर्म को ग्रहण करता है तब उसका नाम भी वैसा ही पड़ जाता है, जैसे, यह वही है ( एकत्वप्रत्यभिज्ञान ) यह उसके सदृश है ( सादृश्य प्रत्यभिज्ञान ) यह उससे विलक्षण है ( वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञान ) यह उसका प्रतियोगी है ( प्रातियोगिक प्रत्यभिज्ञान )

**भावार्थ**—यह प्रत्यभिज्ञान प्रत्यक्ष और स्मरणज्ञान की सहायता से उत्पन्न होता है, और फिर जिस वस्तु को पहले

ग्रहण किया था, उसी वस्तु को एकत्व, सादृश्य तथा वैलक्षण्य आदि धर्मों में से किसी विवक्षित एक धर्म से विशिष्ट ग्रहण करता है। इसी कारण जब जिस धर्म से विशिष्ट वस्तु को ग्रहण करता है तब उसका नाम भी वैसा ही हो जाता है। जैसे कि ऊपर लिखे हैं।

**अब उन्हीं प्रत्यभिज्ञानों के दृष्टान्त दिखाते हैं:—**

**यथा स एवायं देवदत्तः ॥६॥ गो सदृशो गवयः ॥७॥ गो विलक्षणो महिषः ॥८॥ इदमस्माद्दूरम् ॥९॥ वृक्षोऽयमित्यादि ॥ १० ॥**

**भाषार्थ**—जैसे कि यह वही देवदत्त है, यह रोझ उस गौ के समान है, यह भैसा उस गौ से विलक्षण (भिन्न) ही है, यह प्रदेश उस प्रदेश से दूर है, जो हमने पूर्व सुना था वह यही वृक्ष है, इत्यादि और भी प्रत्यभिज्ञान अपनी बुद्धि से जान लेना चाहिए।

**भावार्थ**—ऊपर के दृष्टान्त, क्रम से एकत्व, सादृश्य, वैलक्षण्य तथा प्रातियोगिक प्रत्यभिज्ञान के जानना चाहिए।

## तर्कप्रमाण के कारण व स्वरूप।

**उपलम्भानुपलम्भनिमित्तं व्याप्तिज्ञानमूहः ॥११॥**

**भाषार्थ**—ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम के अनुसार, साध्य और साधन के, एकवार अथवा वार २ किए हुए. दृढ़ निश्चय और अनिश्चय से होने वाले, व्याप्ति (जहां २ धूम होता है वहां २

अग्नि होती है और जहां वह्नि नहीं होती, वहां धूम भी नहीं होता है ) के ज्ञान को तर्क कहते है-ऊह कहते हैं।

**भावार्थ**—साध्य और साधन के एकवार अथवा वार २ किए हुए दृढ़ निश्चय और अनिश्चय से होने वाले, व्याप्ति-ज्ञान को ऊह कहेत हैं; परन्तु वह वार २ का दृढ़ निश्चय तथा अनिश्चय क्षयोपशम के अनुकूल होगा, इसमें सन्देह नहीं है।

**वह व्याप्तिज्ञान इस तरह से प्रवृत्त होता है:—**

**इदमस्मिन् सत्येव भवत्यसति तु न भवत्येव ॥१२॥**
**यथाऽग्नावेव धूमस्तदभावे न भवत्येवेति च ॥१३॥**

**भाषार्थ**—यह साधन रूप वस्तु, इस साध्यरूप वस्तु के होने पर ही होती है और साध्यरूप वस्तु के नहीं होने पर नहीं होती है। जिस प्रकार कि अग्नि के होने पर ही धूम होता है और अग्नि के अभाव में नहीं होता है।

**अनुमान का कारण व स्वरूप।**

**साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानम् ॥ १४ ॥**

**भाषार्थ**—निश्चित साधन से होने वाले, साध्य के ज्ञान को अनुमान कहते हैं।

**भावार्थ**—जिस हेतु का साध्य के साथ अविनाभाव निश्चित है, उस हेतु से होने वाले साध्य के ज्ञान की अनुमान संज्ञा है।

**हेतु ( साधन ) का लक्षण।**

**साध्याविनाभावित्वेन निश्चतो हेतुः ॥१५॥**

**भाषार्थ**—जिस का साध्य के साथ अविनाभाव निश्चित हो अर्थात् जो साध्य के विना नहीं हो सकता हो, उसको हेतु कहते हैं।

## अविनाभाव का लक्षण।

**सहक्रमभावनियमोऽविनाभावः ॥ १६ ॥**

**भाषार्थ**—सहभाव नियम तथा क्रमभाव नियम को अविनाभाव सम्बन्ध कहेत हैं।

**भावार्थ**—जो पदार्थ एक साथ रहते हैं उनमें सहभाव नियम नाम का सम्बन्ध होता है, और जो क्रम से होते हैं उन में क्रमभाव नियम नाम का सम्बन्ध होता है। ये दोनों सम्बन्ध नीचे के दो सूत्रों से स्पष्ट हो जावेंगे।

## सहभाव नियम का प्रदर्शन।

**सहचारिणो र्व्याप्यव्यापकयोश्च सहभावः ॥१७॥**

**भाषार्थ**—साथ रहने वालों में, तथा व्याप्य और व्यापक पदार्थों में, सहभाव नियम नाम का अविनाभाव सम्बन्ध होता है।

**भावार्थ**—रूप और रस एक साथ रहने वाले हैं, और वृक्ष व्यापक व शिंशपा ( सीसम ) उसका व्याप्य है, इस कारण इन्हीं में सहभाव नियम नामका अविनाभाव माना जाता है।

## क्रमभाव नियम का खुलासा।

**पूर्वोत्तरचारिणोः कार्यकारणयोश्च क्रमभावः॥१८॥**

**भाषार्थ**—पूर्वचर-उत्तरचरों में तथा कार्य-कारणों में क्रमभाव नियम होता है।

**भावार्थ**—कृतिका का उदय अन्तर्मुहूर्त पहले होता है और रोहणी का उदय पीछे होता है; इस लिए इन दोनों में क्रमभाव माना जाता है, इसी प्रकार अग्नि और धूम में भी क्रमभाव माना जाता है; क्योंकि अग्नि के बाद में धूम होता है। इसको अनन्तरभाव नियम भी कहते हैं।

## इस व्याप्ति (अविनाभाव) का ज्ञान-निर्णय, तर्कप्रमाण से होता है। सोही आचार्य कहते हैं:-

**तर्कात्तन्निर्णयः ॥ १९ ॥**

**भाषार्थ**—तर्कप्रमाण—ऊहप्रमाण, से व्याप्ति अर्थात् अविनाभाव का निर्णय होता है।

**भावार्थ**—जहां २ साधन होता है वहां २ साध्य रहता है और जहां साध्य नहीं होता, वहां साधन भी नहीं रहता है। इस प्रकार के अविनाभाव का निश्चय अर्थात् सच्चा ज्ञान, तर्कप्रमाण अर्थात् ऊह प्रमाण से होता है, अन्य किसी प्रमाण से नहीं। विशेष बात यह है कि जैनियों के सिवाय और किसी भी मतावलम्बी ने तर्कप्रमाण को नहीं माना है; इस लिए सब की मानी हुई प्रमाण संख्या झूंठी ठहरती है अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान, अर्थापत्ति, तथा अभाव किसी प्रमाण से भी व्याप्ति का निर्णय नहीं हो सकता है; इस लिए सब को ही तर्कप्रमाण मानना पड़ता है, तब प्रमाण संख्या जोकि स्वयं मानी थी कहाँ रहेगी। प्रत्यक्षादि प्रमाण व्याप्ति का निर्णय नहीं कर सकते हैं। इस बात को बड़े २ न्याय के ग्रन्थों से जानना चाहिए।

## साध्य का स्वरूप।

**इष्टमबाधितमसिद्धं साध्यम् ॥ २० ॥**

**भाषार्थ**—जो वादी को इष्ट अर्थात् अभिप्रेत हो तथा प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणों से बाधित न हो, और सिद्ध न हो, उसको साध्य कहते हैं।

**भावार्थ**—जिसको वादी सिद्ध करना चाहता है तथा जिसमें प्रत्यक्ष वग़ैरह प्रमाणों से बाधा न आती हो, और जो सिद्ध न हो, क्योंकि सिद्ध को साधने से कोई फल नहीं होता है, उसको साध्य कहते हैं।

## अब ऊपर के कहे हुए 'असिद्ध' विशेषण का फल दिखाते हैं:—

**संदिग्धविपर्यस्ताव्युत्पन्नानां साध्यत्वं यथा स्यादित्यसिद्धपदम् ॥ २१ ॥**

**भाषार्थ**—साध्य को असिद्ध विशेषण इस लिए दिया है, कि जिसमें संदिग्ध, विपर्यस्त तथा अव्युत्पन्न पदार्थ भी साध्य हो सकें।

**भावार्थ**—संदिग्ध अर्थात् संशय ज्ञान का विषय पदार्थ, तथा विपर्यस्त अर्थात् विपरीत ज्ञान का विषय पदार्थ, और अव्युत्पन्न अर्थात् अनध्यवसाय ज्ञान का विषय पदार्थ, इन सभों को साध्य बना सकें; इस लिए साध्य, असिद्ध होना चाहिए अर्थात् जो असिद्ध होता है उसको साध्य कहते हैं—यह कहा है, ।

अब इष्ट तथा अबाधित विशेषणों का फल दिखाते हैं:—

**अनिष्टाध्यक्षादिबाधितयोः साध्यत्वं मा भूदितीष्टाबाधितवचनम् ॥ २२ ॥**

**भाषार्थ**—अनिष्ट तथा प्रत्यक्ष आदिक प्रमाणों से बाधित पदार्थों को साध्यपने का निषेध करने के लिए साध्य को इष्ट तथा अबाधितविशेषण दिए हैं।

**भावार्थ**—मीमांसक को अनित्य शब्द इष्ट नहीं है; इस लिए वह कभी भी शब्द में अनित्यपना सिद्ध नहीं कर सकता है, बस, इसी के निषेध करने को कहा है कि साध्य वही होगा: जो वादी को इष्ट होगा, इसी प्रकार जो प्रमाण से बाधित होगा वह भी साध्य नहीं हो सकता है। वह बाधित, प्रत्यक्ष से, अनुमान से, आगम से, तथा लोक से, और स्ववचन से इत्यादि बहुत प्रकार का होता है इसका निरूपण पक्षाभास में आगे किया है।

साध्य का इष्ट विशेषण वादी की अपेक्षा से है:—

**नचासिद्धवदिष्टं प्रतिवादिनः ॥ २३ ॥**

**भाषार्थ**—जिस तरह असिद्ध विशेषण प्रतिवादी की अपेक्षा से है उस तरह इष्ट विशेषण नहीं; किन्तु वह इष्ट विशेषण वादी की अपेक्षा से है।

उसीको पुष्ट करते हैं:—

**प्रत्यायनाय हीच्छा वक्तुरेव ॥ २४ ॥**

**भाषार्थ**—दूसरे को समझाने की इच्छा वादी (वक्ता) को

ही होती है प्रतिवादी को नहीं; किन्तु प्रतिवादी को उस के खण्डन की इच्छा होती है।

**भावार्थ**—इष्ट विशेषण वादी की ही अपेक्षा से है। जो पहले से पक्ष को बोलता है उसको वादी कहते हैं, और पीछे से पक्ष के निराकरण करने वाले को प्रतिवादी कहते हैं।

**वह साध्य कहीं धर्म होता है तथा कहीं धर्म से युक्त धर्मी (पक्ष) होता है :—**

**साध्यं धर्मः क्वचित्तद्विशिष्टो वा धर्मी ॥ २५ ॥**

**भाषार्थ**—कहीं (व्याप्ति प्रयोग के काल में) धर्म साध्य होता है तथा कहीं (अनुमान प्रयोग के काल में) धर्म से युक्त धर्मी साध्य होता है।

**भावार्थ**—जहां २ धूम होता है वहां २ बह्नि होती है तथा जहां बह्नि नहीं होती, वहां २ धूम भी नहीं होता है इस प्रकार की व्याप्ति के समय में अग्नि रूप धर्म ही साध्य होता है, अन्य नहीं। और इस पर्वत में अग्नि है क्योंकि इसमें धूम है इस प्रकार के अनुमान के समय अग्नि से विशिष्ट पर्वत ही साध्य होता है।

**उसी धर्मी का दूसरा नाम :—**

**पक्ष इति यावत् ॥ २६ ॥**

**भाषार्थ**—उसी धर्मी को पक्ष भी कहते हैं।

**वह पक्ष प्रसिद्ध होता है :—**

**प्रसिद्धो धर्मी ॥ २७ ॥**

**भाषार्थ**—धर्मी ( पक्ष ) प्रसिद्ध होता है ।

**भावार्थ**—वह प्रसिद्धता कहीं प्रमाण से, तथा कहीं विकल्प से और कहीं प्रमाणविकल्प से होती है ।

### विकल्पसिद्ध धर्मी में साध्य का नियम :—

## विकल्पसिद्धे तस्मिन् सत्तेतरे साध्ये ॥ २८ ॥

**भाषार्थ**—विकल्प सिद्ध धर्मी में सत्ता ( अस्तित्व = मौजूदगी ) तथा असत्ता ( ग़ैरमौजूदगी ) दो ही साध्य होते हैं । यह नियम है ।

**भावार्थ**—जिस पक्ष का न तो किसी प्रमाण से अस्तित्व सिद्ध हो, और न नास्तित्व सिद्ध हो, उस पक्ष को विकल्पसिद्ध कहते हैं । वही न्यायदीपिका में लिखा है कि—" अनिश्चित प्रामाण्याप्रामाण्यप्रत्ययगोचरत्वं विकल्पसिद्धत्वम् " ।

### उन दोनों साध्यों के दृष्टान्त एवं हैं :—

## अस्ति सर्वज्ञो नास्ति खरविषाणम् ॥ २९ ॥

**भाषार्थ**—सर्वज्ञ है तथा खरविषाण (गधे का सींग) नहीं है ।

**भावार्थ**—सर्वज्ञ है, यहां पर सर्वज्ञ पक्ष विकल्पसिद्ध है; क्योंकि अभी तक सर्वज्ञ का अभाव और सद्भाव दोनों ही सिद्ध नहीं हैं । 'सर्वज्ञ है' इस में, "क्योंकि उसका कोई बाधक प्रमाण नहीं है'' यह 'हेतु' समझना चाहिए । खरविषाण नहीं है यहां पर "प्राप्त होने योग्य होकर भी वह पाया नहीं जाता,, यह 'हेतु' जानना चाहिए, और यह भी पक्ष विकल्पसिद्ध ही है ।

अब प्रमाणसिद्ध और प्रमाणविकल्पसिद्ध धर्मी में साध्य बतलाते हैं:—

**प्रमाणोभयसिद्धे तु साध्यधर्मविशिष्टता ॥ ३० ॥**

**भाषार्थ**—प्रमाण ( प्रत्यक्ष अनुमान आदि ) से और प्रमाण-विकल से प्रसिद्ध धर्मी में साध्य धर्म से विशिष्टता अर्थात् संयुक्तता साध्य होती है।

**भावार्थ**—इन दो धर्मिओं में कोई साध्य का नियम नहीं है; जैसा कि विकल्पसिद्ध धर्मी में असत्ता और सत्ता का है।

उसी को दृष्टान्त से पुष्ट करते हैं:—

**अग्निमानयं देशः परिणामी शब्द इति यथा ॥३१॥**

**भाषार्थ**—जैसे 'यह प्रदेश अग्निवाला है' यहां पर्वत आदि प्रदेश, प्रत्यक्ष आदिसे सिद्ध रहते हैं। और "शब्द परिणमनशील होते हैं" यहां शब्द ( पक्ष ) वर्तमान काल वाला तो प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है; परन्तु भूत और भविष्यत् शब्द विकल्प सिद्ध हैं; इस लिए शब्द रूप पक्ष प्रमाणविकल्पसिद्ध धर्मी है।

व्याप्ति कालमें साध्य का नियमः—

**व्याप्तौ तु साध्यं धर्म एव ॥ ३२ ॥**

**भाषार्थ**—व्याप्ति के काल में धर्म ही साध्य होता है, धर्म विशिष्ट धर्मी नहीं।

इसी निषेध को पुष्ट करते हैं:—

**अन्यथा तदघटनात् ॥ ३३ ॥**

**भाषार्थ**—धर्म विशिष्ट धर्मी (पक्ष) को साध्य करने से व्याप्ति ही नहीं बनती है।

**भावार्थ**—जहां २ धूम होता है वहां २ पर्वत ही अग्नि वाला हो, सो तो ठीक नहीं, किन्तु कहीं पर्वत रहेगा, कहीं रसोई घर रहेगा; इस लिए व्याप्ति काल में धर्म विशिष्ट धर्मी (पक्ष) साध्य नहीं हो सकता है।

**बौद्ध मानते हैं कि पक्ष बोलने की ज़रूरत नहीं है; क्यों कि साध्य, विना आश्रय के नहीं रह सकता; इस लिए साध्य के बोलने से ही पक्ष स्वतः सिद्ध हो जायगा।**

**आचार्य उत्तर देते हैं:—**

**साध्यधर्माधारसन्देहापनोदाय गम्यमानस्यापि पक्षस्य वचनम् ॥ ३४ ॥**

**भाषार्थ**—साध्य धर्म (अग्नि) के आधार में सन्देह (पर्वत है या रसोईघर) को दूर करने के लिए स्वतः सिद्ध, पक्ष का भी प्रयोग किया जाता है।

**भावार्थ**—यद्यपि साध्य के बोलने मात्र से ही पक्ष उपस्थित होजाता है, तथापि उसमें (पक्ष में) सन्देह न हो, इस लिए स्वतः सिद्ध पक्ष का भी प्रयोग करते हैं।

**उसी को दृष्टान्त से दृढ़ करते हैं:—**

**साध्यधर्मिणि साधनधर्मावबोधनाय पक्षधर्मोपसंहारवत् ॥ ३५ ॥**

**भाषार्थ**—जैसे कि साध्य से युक्त धर्मी ( पक्ष ) में साधन को समझाने के लिए उपनय ( पक्ष में हेतु का दूसरे प्रदर्शन ) किया जाता है ।

**भावार्थ**—इसदेश में अग्नि है क्योंकि धूम है जहां २ धूम होता है वहां २ अवश्य अग्नि होती है जैसे रसोईघर । इस प्रकार साध्य ( अग्नि ) के साथ व्याप्ति को रखनेवाले, साधन ( धूम ) को दिखाने से ही, उनका ( साध्य साधन का ) आधार मालूम हो जाता है क्योंकि वे विना आधार के रह ही नहीं सकते हैं । फिर आगे जाकर "जैसा रसोई घर धूमवाला है उसी तरह यह पर्वत भी धूमवाला है" यह उपनय अर्थात् खास पक्ष में दुबारा धूम का प्रदर्शन क्यों किया जाता है; इसी लिए न ? कि निश्चित पक्ष में साधन मालूम होजाय। बस, इसी तरह निश्चित पक्ष में साध्य मालूम होजाय । इसी लिए, स्वतः सिद्ध होने पर भी पक्षका प्रयोग किया जाता है । अथवा दूसरा उत्तर यह है, कि हेतु का प्रयोग ही नहीं करना चाहिए क्योंकि जब समर्थन किया जायगा अर्थात् यह कहाजायगा कि हमारा हेतु असिद्ध नहीं हैं, विरुद्ध नहीं है तथा अनैकान्तिक भी नहीं है, तब हेतु का प्रयोग स्वतः ही सिद्ध हो जायगा । यदि कहो कि हेतु के प्रयोग विना समर्थन ही किसका होगा। तो हम पूछते हैं कि पक्ष-प्रयोग के विना साध्य कहां मालूम होगा ।

**इसी को आचार्य उपहास करते हुए कहते हैं:—**

**को वा त्रिधाहेतुमुक्त्वा समर्थयमानो न पक्षयति॥३६॥**

**भाषार्थ**—कौन ऐसा मनुष्य है जो तीन प्रकार के हेतु को

कह करके ही समर्थन तो करे; परन्तु पक्ष का प्रयोग न करे अर्थात् सब ही लोग पक्ष का प्रयोग करेंगे।

**भावार्थ**—जिसप्रकार विना कहे हेतुका समर्थन नहीं हो सकता है उसीतरह पक्षके प्रयोग विना साध्यके आधारका भी तो निश्चय नहीं हो सकता है। इसलिए पक्ष-प्रयोग करना ठीक ही है। यहाँ हेतुके तीनप्रकार स्वभावहेतु, कार्यहेतु और अनुपलब्धि-हेतु लेना, अथवा पक्षसत्व सपक्षसत्व और विपक्ष व्यावृत्ति लेना।

**यहाँ सांख्य कहता है कि अनुमान के दो ( पक्ष और हेतु ) ही अवयव नहीं; किन्तु तीन अवयव (अंग) हैं, जैसे पक्ष, हेतु और उदाहरण। क्योंकि जिस तरह पक्ष और हेतु साध्य की सिद्धि में कारण हैं उसी तरह उदाहरण भी है, फिर उदाहरण अनुमान का अवयव क्यों नहीं? दूसरी बात यह है कि उदाहरण के विना वादी और प्रतिवादी की समान बुद्धि कहाँ होगी। परन्तु जैनी कहते हैं कि अनुमान-प्रयोग के दो अर्थात् पक्ष और हेतु ही अवयव हैं अन्य नहीं। सोही कहते हैं :—**

**एतद्द्वयमेवानुमानाङ्गं नोदाहरणम् ॥ ३७ ॥**

**भाषार्थ**—पक्ष और हेतु-ये दोनों ही अनुमान के होने में कारण हैं अर्थात् अनुमान के अंग हैं। उदाहरण नहीं।

**भावार्थ**—यहाँ उदाहरण का निषेध किया है।

**किसी का कहना है कि उदाहरण के विना साध्य**

का ज्ञान ही नहीं हो सकता है; इसलिए उदाहरण का प्रयोग करना चाहिए। उत्तर इस प्रकार है :—

**नहि तत्साध्यप्रतिपत्त्यङ्गं तत्र यथोक्तहेतोरेव व्यापारात् ॥ ३८ ॥**

**भाषार्थ**—उदाहरण साध्य के ज्ञान का कारण नहीं है; क्योंकि साध्य के ज्ञान में निश्चित हेतु ही कारण होता है।

**भावार्थ**—जिस हेतु का साध्य के साथ अविनाभाव निर्णीत है, वह हेतु अवश्य ही अपने साध्य को जनावेगा; फिर उदाहरण के प्रयोग की कोई भी आवश्यकता नहीं।

इसके बाद भी किसी का कहना है कि उदाहरण के प्रयोग विना, साध्य के साथ हेतु का अविनाभाव ही निश्चित नहीं हो सकता है। फिर ऊपर के सूत्र से निषेध कैसे होगा अर्थात् नहीं होगा; इसलिए उदाहरण का प्रयोग करना चाहिए। जिस से कि साध्य के साथ हेतु का अविनाभाव निर्णीत होवे। उत्तर इस प्रकार है :—

**तदविनाभावनिश्चयार्थं वा विपक्षे बाधकादेव तत्सिद्धेः ॥ ३९ ॥**

**भाषार्थ**—साध्य के साथ, हेतु (साधन) के अविनाभाव के निर्णय में भी, उदाहरण कारण नहीं है; क्योंकि विपक्ष में बाधक प्रमाण मिलने से ही साध्य के साथ हेतु का अविनाभाव सिद्ध हो जाता है अर्थात् यह बात सिद्ध हो जाती है कि यह साधन अमुक साध्य के विना हो ही नहीं सकता है।

**भावार्थ**—साध्य से विजातीय धर्म वाले धर्मी को विपक्ष कहते

हैं। जैसे पर्वत में अग्नि सिद्ध करने के समय रसोईघर तो सपक्ष होता है; क्योंकि साध्य से सजातीय धर्म वाले धर्मी को सपक्ष कहते हैं, और तालाब विपक्ष होता है; क्योंकि उसमें साध्य (अग्नि) से विजातीय धर्म ( जल ) है। अब देखिए, कि धूम हेतु का अग्नि साध्य के साथ यों अविनाभाव सिद्ध होता है कि तालाब में अग्नि के अभाव में धूम नहीं पाया जाता है, यदि पाया जाय, तो धूम और अग्नि के कार्यकारणभाव का भंगरूप बाधकप्रमाण उपस्थित होगा। बस, ऐसे ही विपक्ष में बाधक प्रमाण ( तर्कप्रमाण ) मिलते हैं, जिन्हों से सा य के साथ साधन का अविनाभाव निर्णीत होजाता है फिर उदाहरण की आवश्यकता ही क्या? कुछ भी नहीं।

### दूसरी बात यह है :—

**व्यक्तिरूपं च निदर्शनं सामान्येन तु व्याप्तिस्तत्रापि तद्विप्रतिपत्तावनवस्थानं स्याद्दृष्टान्तान्तरापेक्षणात् ॥ ४० ॥**

**भाषार्थ**—किसी खास व्यक्तिरूप ( महानस या पर्वतरूप ) तो उदाहरण होता है। और सामान्य रूप अर्थात् सम्पूर्ण देश में संपूर्ण काल में तथा संपूर्ण आकारों में रहने वाले साध्य और साधन को ग्रहण करने वाली व्याप्ति होती है। फिर बतलाइए, कि एक व्यक्तिरूप दृष्टान्त, सामान्यरूप व्याप्ति (अविनाभाव) को कैसे ग्रहण करसकता है ( नहीं कर सकता है) और यदि उस उदाहरण रहने वाले साध्य साधन के विषय में विवाद खड़ा होजाय; तो दूसरे दृष्टान्त की अर्थात् दृष्टान्तके लिए भी दृष्टान्त की आवश्यकता होगी; जिस से कि अनवस्था नाम का दोष आवेगा।

भावार्थ—जिसप्रकार एक दृष्टान्तकी सचाईके लिए दूसरे दृष्टान्तकी आवश्यकता हुई, उसीप्रकार उसकी सचाईके लिए तसिरे-की और तीसरेकी सचाईके लिए चौथेकी आवश्यकता होगी; जिस से गगनतलमें फैलनेवाली बड़ी भारी अनवस्था चलीजायगी अर्थात् कहीं पर छोर नहीं आवेगा। अप्रमाणिक अनन्त पदार्थोंकी कल्पना में विश्रान्ति नहीं होने को ही अनवस्था दोष कहते हैं।

**इसके बाद भी किसी का कहना है कि व्याप्ति का निश्चय उदाहरण से नहीं होता है तो जाने दीजिए; परन्तु व्याप्ति का स्मरण तो होता है बस; पूर्व में ग्रहण की हुई व्याप्ति के स्मरण कराने के लिए ही उदाहरण का प्रयोग करिए। उत्तर यह है :—**

**नापि व्याप्तिस्मरणार्थं तथाविधहेतुप्रयोगा देव तत्स्मृतेः ॥ ४१ ॥**

भाषार्थ—व्याप्ति के स्मरण कराने के लिए भी उदाहरण का प्रयोग करना कार्यकारी नहीं है; क्योंकि साध्य के विना नहीं होने वाले, हेतु के प्रयोग से ही व्याप्ति का स्मरण हो जाता है।

भावार्थ—जब ऐसे हेतु का प्रयोग किया जायगा, जो कि साध्य के विना हो ही नहीं सकता है तो अवश्य ही उसी से व्याप्ति स्मृत हो जायगी, उदाहरण की कोई भी आवश्यकता नहीं।

विशेष बात यह है कि पूर्व अनुभूत पदार्थ का ही स्मरण होता है सो यदि व्याप्ति पूर्व अनुभूत रहेगी, तो हेतु-प्रयोग से ही

उसका स्मरण हो जायगा, और जिसने पहले कभी व्याप्ति का अनुभव किया ही नहीं, उसके लिए सौ बार भी दृष्टान्त कहा जाय; परन्तु कभी व्याप्ति का स्मारक नहीं होगा।

ऊपर के कथन से यह तो सिद्ध हो गया, कि उदाहरण साध्य की सिद्धि में उपयोगी नहीं; परन्तु इतना ज़रूर है कि यदि केवल दृष्टान्त का प्रयोग किया जायगा; तो उल्टा साध्य की सिद्धि में सन्देह करा देगा। सोही आचार्य कहते हैं:—

**तत्परमभिधीयमानं साध्यधर्मिणि साध्य साधने सन्देहयति ॥ ४२ ॥**

**भाषार्थ**—यदि केवल ( उपनय और निगमन के विना ) उदाहरण का प्रयोग किया जायगा; तो साध्य धर्म वाले धर्मी ( पक्ष ) में साध्य के सिद्ध करने में सन्देह करा देगा।

**भावार्थ**—उदाहरण ( रसोईघर ) के बोलने से पर्वत ( पक्ष ) में क्या आया; जिससे कि यह निश्चय हो जाय; कि यहां अग्नि है। किन्तु सन्देह अवश्य होगा, कि जैसी रसोई-घर में अग्नि थी वैसी अग्नि यहां कहां से आई।

इसी सन्देह को पुष्ट करते हैं:—

**कुतोऽन्यथोपनयनिगमने ॥ ४३ ॥**

**भाषार्थ**—यदि उदाहरण के प्रयोग से सन्देह नहीं होता है; तो उपनय और निगमन का प्रयोग क्यों किया जाता है।

भावार्थ—उपनय और निगमनका प्रयोग संशयको दूर करने को ही किया जाता है; इससे सिद्ध हुआ, कि उदाहरण से सन्देह होता है। उपनय और निगमनका स्वरूप आगे कहा जायगा।

**यहां नैयायिक कहता है कि उपनय और निगमन भी अनुमान के अङ्ग ( कारण ) हैं, इस कारण जब तक उन का प्रयोग नहीं किया जायगा; तब तक यथार्थ साध्य की सिद्धि नहीं होगी, इसलिए उनका भी प्रयोग करना चाहिए। उत्तर इस प्रकार है :—**

**न च ते तदङ्गे साध्यर्मिणि हेतुसाध्ययोर्वचनादेवा-संशयात् ॥ ४४ ॥**

भाषार्थ—उपनय और निगमन भी अनुमान के अङ्ग नहीं हैं; क्योंकि हेतु और साध्य के बोलने से ही साध्य धर्म वाले धर्मी ( पक्ष ) में सन्देह मिट जाता है।

भावार्थ—जब कि हेतु और साध्य के बोलने मात्र से ही पक्ष में संशय नहीं रहता है तब उपनय और निगमन अनुमान के अंग होकर ही क्या करेंगे अर्थात् उनकी निरर्थक कल्पना होगी।

**दूसरा उत्तर यह है कि थोड़ी देर के लिए उदाहरण आदिक का प्रयोग मान भी लिया जाय; तब भी हेतु का समर्थन तो अवश्य ही करना पड़ेगा; क्योंकि जिस हेतु का समर्थन नहीं हुआ, वह हेतु ही नहीं हो सकता है। सोही कहते हैं:—**

**समर्थनं वा वरं हेतुरूपमनुमानावयवो वास्तु साध्ये तदुपयोगात् ॥ ४५ ॥**

**भाषार्थ**—समर्थन ही वास्तविक हेतु का स्वरूप है और वही अनुमान का अंग है; क्योंकि साध्य की सिद्धि में उसी का उपयोग होता है।

**भावार्थ**—जब समर्थन ही साध्य की सिद्धि करा देता है; तो हेतु को बोलकर उसी का समर्थन करना ही कार्यकारी हुआ, अन्य (उदाहरण आदिक) नहीं। दोषों का अभाव दिखाकर हेतु के पुष्ट करने को समर्थन कहते हैं। हेतु के दोष आगे कहे जावेंगे।

**मन्दबुद्धिवाले विद्यार्थियों को समझाने के लिए उदाहरण, उपनय और निगमन का प्रयोग करना जैनी लोग मानते हैं। सो ही कहते हैं:—**

**बालव्युत्पत्त्यर्थं तत्त्रयोपगमे शास्त्र एवासौ न वादेऽनुपयोगात् ॥ ४६ ॥**

**भाषार्थ**—बालकों को समझाने के लिए उदाहरण, उपनय और निगमन की स्वीकारता शास्त्र में ही है वाद में नहीं; क्योंकि वाद करने का विद्वानों को ही अधिकार होता है, इसलिए वहां (वाद में) उदाहरण आदिक का प्रयोग उपयोगी नहीं।

**भावार्थ**—वाद के अधिकारी विद्वान् लोग, पहले से ही व्युत्पन्न रहते हैं फिर उनके लिए उदाहरण आदिक की आवश्यकता ही क्या? कुछ नहीं।

## दृष्टान्त के भेद:—

**दृष्टान्तो द्वेधा अन्वयव्यतिरेकभेदात् ॥४७॥**

**भाषार्थ**—दृष्टान्त के दो भेद हैं । एक अन्वयदृष्टान्त दूसरा व्यतिरेकदृष्टान्त ।

## अन्वयदृष्टान्त का स्वरूप ।

**साध्यव्याप्तं साधनं यत्र प्रदर्श्यते सोऽन्वयदृष्टान्तः ॥ ४८ ॥**

**भाषार्थ**—जिस स्थान में, साध्य के साथ साधन की व्याप्ति (अविनाभाव) दिखाई जाय ; उस स्थान को अन्वयदृष्टान्त कहते हैं ।

**भावार्थ**—अन्वयव्याप्ति दिखाकर जो दृष्टान्त दिया जाता है उसको अन्वयदृष्टान्त कहते हैं । जहां २ धूम होता है वहां २ अग्नि होती है इस प्रकार साधन के सद्भाव को दिखाकर साध्य के सद्भाव को दिखाना अन्वयव्याप्ति है ।

## व्यतिरेकदृष्टान्त का स्वरूप ।

**साध्याभावे साधनाभावो यत्र कथ्यते स व्यतिरेकदृष्टान्तः ॥ ४९ ॥**

**भाषार्थ**—जिस स्थान में, साध्य के अभाव को दिखाकर साधन का अभाव दिखाया जाय ; उस स्थान को व्यतिरेक दृष्टान्त कहते हैं ।

**भावार्थ**—व्यतिरेकव्याप्ति दिखाकर जो दृष्टान्त दिया जाता है उसको व्यतिरेकदृष्टान्त कहते हैं । जहां २ अग्नि नहीं

होती है वहां २ धूम भी नहीं होता है इस प्रकार साध्य के अभाव में साधन का अभाव दिखाना व्यतिरेकव्याप्ति है।

### उपनय का स्वरूप।

**हेतोरुपसंहार उपनयः ॥ ५० ॥**

**भाषार्थ**—पक्ष में हेतु के उपसंहार अर्थात् दुहराने को उपनय कहते हैं।

**भावार्थ**—इस पर्वत में अग्नि है क्योंकि धूम है। फिर कोई एक दृष्टान्त देकर कहा जाता है कि 'उसी तरह इसमें धूम है" अथवा "यह धूमवाला है"। बस; पहले धूम है, कहा था फिर दुबारा कहा कि "इसमें धूम है' अतएव कहा जाता है कि पक्ष में साधन के दुहराने को उपनय कहते हैं।

### निगमन का स्वरूप।

**प्रतिज्ञायास्तु निगमनम् ॥ ५१ ॥**

**भाषार्थ**—प्रतिज्ञा के दुहराने को अर्थात् दुबारा बोलने को निगमन कहते हैं जैसे कि "धूमवाला होने से यह अग्निवाला है"।

**भावार्थ**—निगमन का दृष्टान्त उपनय के भावार्थ से आगे समझना चाहिए। पंचावयव वाक्य आगे कहेंगे। उससे खुलासा हो जायगा।

### उस अनुमान प्रमाण के भेद कहते हैं:—

**तदनुमानं द्वेधा ॥ ५२ ॥**

**भाषार्थ**—उस अनुमान के दो भेद हैं।

**स्वार्थपरार्थभेदात् ॥ ५२ ॥**

**भाषार्थ**—एक स्वार्थानुमान दूसरा परार्थानुमान ।

## स्वार्थानुमान का स्वरूप ।

**स्वार्थमुक्तलक्षणम् ॥ ५४ ॥**

**भाषार्थ**—"साधनात्साध्याविज्ञानमनुमानं" इस सूत्र से कहा हुआ ही, स्वार्थानुमान का लक्षण है ।

**भावार्थ**—दूसरे के उपदेश विना स्वतः हुए, साधन से साध्य के ज्ञान को स्वार्थानुमान कहते हैं ।

## परार्थानुमान का स्वरूप ।

**परार्थं तु तदर्थपरामर्शिवचनाज्जातम् ॥५५॥**

**भाषार्थ**—स्वार्थानुमान के विषय, साध्य और साधन को कहने वाले वचनों से उत्पन्न हुए ज्ञान को, परार्थानुमान कहते हैं ।

**भावार्थ**—किसी पुरुष को स्वार्थानुमान हुआ कि यहाँ धूम है इस लिए अवश्य अग्नि होगी; क्योंकि अग्नि के विना धूम हो ही नहीं सकता । फिर वह अपने शिष्य को समझाने के लिए कहता है कि जहां धूम होता है वहां अवश्य अग्नि होती है इसी प्रकार यहां धूम है इसलिए यहां भी वह्नि होनी आवश्यक है । बस; वह ( शिष्य ) समझ लेता है । अब उसको जो ज्ञान हुआ है उसी को परार्थानुमान कहते हैं । क्योंकि परार्थानुमान का लक्षण घट गया, गुरु को स्वार्थानुमान हुआ था और उसके विषय थे साध्य ( अग्नि ) और साधन ( धूम ) । बस; उन्हीं को गुरु ने कहा; फिर गुरु के वचनों से शिष्य को साध्य का साधन से ज्ञान हुआ ।

यहां किसी का कहना है कि परार्थानुमान तो वचनरूप होता है फिर यहाँ क्यों नहीं ग्रहण किया ? उत्तर यों है कि वचनों को गौणता से अनुमान कहा है क्योंकि वे अचेतन हैं और अचेतन से अज्ञान की निर्वृत्ति होती नहीं; इस लिए जब उनसे फल नहीं होता है तब उन्हों को साक्षात् प्रमाण नहीं कह सकते। हां! उपचार (गौणता) से कह सकते हैं। वह इस लिए, कि वे परार्थानुमान के कारण हैं और स्वार्थानुमान के कार्य भी हैं। सोही कहते हैं:—

**तद्वचनमपि तद्धेतुत्वात् ॥ ५६ ॥**

**भाषार्थ**—परार्थानुमान के कारण होने से, परार्थानुमान के प्रतिपादक वचनों को भी, परार्थानुमान कहते हैं। अथवा यों कहिए कि उन वचनों का स्वार्थानुमान कारण है इस लिए उनको अनुमान कहते हैं।

**भावार्थ**—उपचार किसी प्रयोजन को अथवा किसी निमित्त को लेकर किया जाता है। सो यहां वचन एक तो परार्थानुमान के निमित्त हैं दूसरे शास्त्र में अनुमान के पांच अवयवों के व्यवहार करने में प्रयोजनीभूत हैं; क्योंकि ज्ञानस्वरूप आत्मा में प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय तथा निगमन इन पांच अवयवों का व्यवहार नहीं कर सकते हैं इस लिए उपचार से वचनों को भी परार्थानुमान संज्ञा है।

हेतु ( साधन ) के भेद :—

**स हेतुर्द्वेधोपलब्ध्यनुपलब्धिभेदात् ।५७॥**

**भाषार्थ**—" साध्याविनाभावित्वेनानिश्चितोहेतुः " इस सूत्र

से कहे गए हेतु के दो भेद हैं, एक उपलब्धिरूप, दूसरा अनुपलब्धिरूप।

**बौद्ध का कहना है कि उपलब्धिरूपहेतु, विधि अर्थात् मौजूदगी का ही साधक होता है और अनुपलब्धिरूपहेतु निषेध अर्थात् ग़ैरमौजूदगी का ही साधक होता है इस पर आचार्य अपना मत प्रगट करते हैं:—**

**उपलब्धि र्विधिप्रतिषेधयोरनुपलब्धिश्च ॥५८॥**

**भाषार्थ**—चाहे उपलब्धिरूपहेतु हो चाहे अनुपलब्धि रूप। दोनों ही विधि और प्रतिषेध दोनों के साधक हैं।

**भावार्थ**—आगे के सूत्रों से इस सूत्र का भावार्थ स्पष्ट हो जायगा। परन्तु इतनी बात जान लेना चाहिए कि उपलब्धि के दो भेद हैं। जिन में अविरुद्धोपलब्धि (१) तो विधि (मौजूदगी) की साधक है और विरुद्धोपलब्धि (२) निषेध की साधक है इसी प्रकार अनुपलब्धि के भी दो भेद हैं जिन में अविरुद्धानुपलब्धि (१) तो निषेध की साधक है और विरुद्धानुपलब्धि (२) विधि की साधक है।

**अविरुद्धोपलब्धि के भेद:—**

**अविरुद्धोपलब्धिर्विधौ षोढ़ा व्याप्यकार्य-कारणपूर्वोत्तरसहचरभेदात् ॥ ५९ ॥**

**भाषार्थ**—मौजूदगी को सिद्ध करने वाली, अविरुद्धोपलब्धि के छः भेद हैं। अविरुद्धव्याप्योपलब्धि, अविरुद्धकार्योपलब्धि, अविरुद्धकारणोपलब्धि, अविरुद्धपूर्वचरोपलब्धि, अविरुद्धोत्तरचरोपलब्धि, और अविरुद्धसहचरोपलब्धि।

**भावार्थ**—इन छहों भेदों के आदि में एक "साध्य से" इतना पद और जोड़ना चाहिए, तब यह अर्थ करना चाहिए कि साध्य से अविरुद्ध के व्याप्य की उपलब्धिरूप यह हेतु है इत्यादि।

बौद्ध का कहना है कि कार्यहेतु और स्वभावहेतु ये दोनों ही विधि के साधक हैं अन्य नहीं। कारणहेतु तो यों नहीं है कि यह नियम नहीं, कि जहां कारण हो वहां कार्य होवे ही। फिर कारण कार्यको कैसे जना सकता है अर्थात् नहीं जना सकता है। इसका उत्तर यह है :—

**रसादेकसामग्र्यनुमानेन रूपानुमानमिच्छद्भिरिष्टमेव किञ्चित्कारणं हेतु र्यत्र सामर्थ्याप्रतिबन्धकारणान्तरावैकल्ये ॥ ६० ॥**

**भाषार्थ**—रस के चखने से उसकी उत्पादिका सामग्री का अनुमान होता है। वह यह है, कि इस रस की उत्पादिका सामग्री हो गई, यदि नहीं हो गई होती; तो इस समय रस चखने में नहीं आता। और आता है। इस लिए एक सामग्री की सिद्धि होती है। फिर उस सामग्री से रूप का अनुमान होता है। वह यह है, कि रस की उत्पादिका सामग्री ने (रूपस्कंध ने) सजातीय रूपक्षण को उत्पन्न करके ही विजातीय रसक्षण को उत्पन्न किया है; यदि ऐसा न होता; तो रस के समान काल में रूप की प्रतीति नहीं होती। परन्तु होती है। इस से सिद्ध होता है कि उस सामग्री ने रूप को भी उत्पन्न किया है। इस प्रकार रस से सामग्री का और कारण रूप सामग्री से रूप का अनुमान माननेवाले बौद्धों ने कहीं पर

कारण रूप हेतु स्वयं माना ही है जहाँ पर कि कारण की सामर्थ्य ( शक्ति ) का प्रतिबन्ध ( रुकावट ) नहीं होगा; तथा अन्य किसी कारण की कमी नहीं होगी।

**भावार्थ**—जहाँ कारण की शक्ति मणि मन्त्र वगैरह से रोक दी जायगी अथवा किसी सहाई कारण की कमी होगी, वहां कारण, कार्य का गमक अर्थात् जनाने वाला नहीं होगा। और दूसरी जगह तो अवश्य ही होगा।

**इसी प्रकार पूर्वचर और उत्तरचर हेतु भी भिन्न ही हैं; क्योंकि उनका किसी भी हेतु में अन्तर्भाव नहीं होता है। सोही दिखाते हैं :—**

**न पूर्वोत्तरचारिणोस्तादात्म्यं तदुत्पत्तिर्वा कालव्यवधाने तदनुपलब्धेः ॥ ६१ ॥**

**भाषार्थ**—पूर्वचर तथा उत्तरचर हेतुओं का साध्य के साथ तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है अतः स्वभाव हेतु में अन्तर्भाव नहीं होता है तथा तदुत्पत्तिसम्बन्ध भी नहीं है अतः कार्य और कारणहेतु में भी अन्तर्भाव नहीं होता है। ये दोनों क्यों नहीं ? इस का उत्तर यह है, कि काल के व्यवधान ( फासले ) में ये दोनों सम्बन्ध होते नहीं हैं।

**भावार्थ**—इन दोनों हेतुओं में साध्य से अन्तर्मुहूर्त काल का व्यवधान ( फासला ) रहता है इस लिए इन में कार्य और कारण की नांई तदुत्पत्तिसम्बन्ध नहीं है तथा स्वभाव और स्वभावी की नांई तदात्म्यसम्बन्ध नहीं है।

इस पर बौद्ध का कहना है कि काल के व्यवधान में भी कार्यकारणभाव होता है जैसे आगामीमरण अरिष्टों (अपशकुनों) का कारण होता है तथा अतीत (गुजरा हुआ) ज्ञान, उद्बोध ( सो करके जागने की अवस्था के ज्ञान ) का कारण होता है । उत्तर यह है:—

**भाव्यतीतयो र्मरणजागृद्बोधयोरपि नारिष्टो-द्बोधौ प्रति हेतुत्वम् ॥ ६२ ॥**

**भाषार्थ**—आगामीमरण तथा बीताहुआ जागने की अवस्था का ज्ञान, क्रम से अरिष्ट ( अपशकुन ) और उद्बोध के लिए कारण नहीं है ।

**भावार्थ**— आगामीमरण, अरिष्टोंका कारण नहीं तथा बीताहुआ सायंकालका ज्ञान, प्रातःकालके ज्ञानका कारण नहीं है ।

उसी में हेतु देते हैं:—

**तद्व्यापाराश्रितं हि तद्भावभावित्वम् ॥ ६३ ॥**

**भाषार्थ**—जिसकारण से कि कार्यकारणभाव का होना कारण के व्यापार की अपेक्षा रखता है ।

**भावार्थ**—उसके (कारण के) सद्भाव में उसका (कार्य का) होना कारण के व्यापार के आधीन है । परन्तु जब मरण है ही नहीं तब उसका अरिष्ट के होने में व्यापार ही क्या होगा; जिससे कि कार्यकारणभाव मान लिया जाय । इसी प्रकार जाग्रद्बोध जब नष्ट ही हो गया; तब उसका भी उद्बोधके प्रति क्या व्यापार होगा ?

**इसीप्रकार सहचरहेतु भी सब हेतुओंसे भिन्न है :—**

**सहचारिणोरपि परस्परपरिहारेणावस्थाना-त्सहोत्पादाच्च ॥ ६४ ॥**

**भाषार्थ**—सहचारी ( रूप = रस ) पदार्थ परस्परकी भिन्नता से रहते हैं अर्थात् परस्परकी भिन्नतासे उनकी प्रतीति होती है; अतः सहचारीहेतुका स्वभावहेतुमें अन्तर्भाव नहीं होसकता, और सहचारीपदार्थ एकसाथ उत्पन्न होते हैं इसकारण उनमें कार्य-कारणभाव भी नहीं बनसकता है । जिससे कि कार्यहेतुमें अथवा कारणहेतुमें अन्तर्भाव कियाजाय ।

**भावार्थ**—जिसप्रकार युगपत् उत्पन्नहुए गायके सींगोंमें कार्य-कारणभाव नहीं होता है उसीप्रकार सहचरोंमें भी नहीं होता; इस लिए सहचरहेतु एक भिन्नही हेतु है ।

**अविरुद्धव्याप्योपलब्धिका उदाहरण ।**

**परिणामी शब्दः कृतकत्वात्, य एवं स एवं दृष्टो यथा घटः कृतकश्चायं तस्मात्परिणामी, यस्तु न परिणामी स न कृतको दृष्टो यथा बन्ध्यास्तनन्धयः कृतकश्चायं तस्मात्परिणामी ॥ ६५ ॥**

**भाषार्थ**—शब्द "परिणामी" होताहै क्योंकि वह कियाहुआ होता है जो २ किये हुए होते हैं वे २ पदार्थ परिणामी होते हैं जैसे घट । उसीतरह शब्दभी कियाजाता है अतएव वहभी परिणामी होता है । अथवा जो पदार्थ परिणामी नहीं होते हैं वे पदार्थ किये भी

नहीं जाते हैं जैसे बन्ध्यास्त्रीका पुत्र। बस; उसीतरह शब्द कृतक होता है इसीकारण परिणामी होता है।

**भावार्थ**—यहां अनुमानके वे पांच अवयव ( अंग ) बतलाए गये हैं जिनकी बालव्युत्पत्तिके लिए आचार्यने प्रतिज्ञाकी थी। परिणामी ( पक्ष या प्रतिज्ञा ) कृतक ( हेतु ) घट ( अन्वयदृष्टान्त ) तथा वन्ध्यापुत्र ( व्यतिरेकदृष्टान्त ) और दोनों दृष्टान्तों के बाद "यह कृतक है" ( उपनय ) और "कृतक होनेसे परिणामी" यह निगमन है। यहां परिणामी साध्यसे अविरुद्धव्याप्य कृतकत्वकी उपलब्धि है। जो अल्पदेशमें रहें उसको व्याप्य कहते हैं और जो बहुतदेशमें रहें उसे व्यापक कहते हैं। अब देखिए, कि-परिणामित्व तो विना कियेहुए आकाशादि द्रव्योंमें रहनेसे व्यापक है और कृतकत्व केवल पुद्गलद्रव्यमें रहनेसे व्याप्य है। भावार्थ। केवल पुद्गलद्रव्यमें ही परिणामीपना और कृतकपना साथ रहते हैं अन्य द्रव्योंमें नहीं।

### अविरुद्धकार्योपलब्धिका उदाहरण।

**अस्त्यत्र देहिनि बुद्धि र्व्याहारादेः ॥ ६६ ॥**

**भाषार्थ**—इस प्राणीमें बुद्धि है क्योंकि बुद्धिके कार्य वचन आदि पायेजाते हैं। यहां बुद्धि साध्य, और वचनादि हेतु है।

**भावार्थ**—यहाँ बुद्धिके अविरुद्धकार्य, वचनादिककी उपलब्धि है।

### अविरुद्धकरणोपलब्धिका उदाहरण।

**अस्त्यत्र छाया छत्रात् ॥ ६७ ॥**

**भाषार्थ**—यहां छाया है क्योंकि छत्र मौजूद है।

भावार्थ—यहां छायाके अविरुद्धकारण छत्रकी मौजूदगी है।

### अविरुद्धपूर्वचरोपलब्धिका उदाहरण ।

**उदेष्यति शकटं कृतिकोदयात् ॥ ६८ ॥**

भाषार्थ—एकमुहूर्तके बाद रोहणीका उदय होगा क्योंकि कृतिकाका उदय होरहा है।

भावार्थ—यहां रोहणीके उदयसे पूर्व होनेवाले कृतिकाके उदयकी मौजूदगी है।

### अविरुद्धउत्तरचरोपलब्धिका उदाहरण ।

**उद्गाद्भरणिः प्राक्तत एव ॥ ६९ ॥**

भाषार्थ—एकमुहूर्तके पहलेही भरणिका उदय होगया है क्योंकि कृतिकाका उदय होरहा है।

भावार्थ—यहां भरणिके अविरुद्धउत्तरचर, कृतिकाके उदय की उपलब्धि है।

### अविरुद्धसहचरोपलब्धिका उदाहरण ।

**अस्त्यत्र मातुलिङ्गे रूपं रसात् ॥ ७० ॥**

भाषार्थ—इस मातुलिंग ( बिजौरे ) में रूप है क्योंकि रस पायाजाता है।

भावार्थ—यहां रूपका अविरुद्धसहचर, रस मौजूद है।

### विरुद्धोपलब्धिके भेद :—

**विरुद्धतदुपलब्धिः प्रतिषेधे तथा ॥ ७१ ॥**

भाषार्थ—प्रतिषेध[illegible] विरुद्धोपलब्धिके भी छह भेद हैं।

विरुद्धव्याप्योपलब्धि, विरुद्धकार्योपलब्धि, विरुद्धकारणोपलब्धि, विरुद्धपूर्वचरोपलब्धि, विरुद्धोत्तरचरोपलब्धि, और विरुद्धसहचरोपलब्धि।

**भावार्थ**—यहाँपर सब हेतुओंके आदिमें वह पद जोड़ना चाहिए; जिसकाकि आप प्रतिषेध करना चाहते है। बस; उसीके विरुद्धकी उपलब्धिरूप हेतु पड़ जायगा।

**विरुद्धव्याप्योपलब्धिका उदाहरण।**

**नास्त्यत्र शीतस्पर्श औष्ण्यात् ॥ ७२ ॥**

**भाषार्थ**—यहाँ शीतस्पर्श नहीं है क्योंकि शीतस्पर्शसे विरुद्ध–अग्नि–की व्याप्य–उष्णता–मौजूद है।

**भावार्थ**—जिसका व्याप्य मौजूद है वह उसीको जनावेगा।

**विरुद्धकार्योपलब्धिका उदाहरण।**

**नास्त्यत्र शीतस्पर्शो धूमात् ॥ ७३ ॥**

**भाषार्थ**—यहां शीतस्पर्श नहीं है क्योंकि शीतस्पर्शसे विरुद्ध–अग्नि–का कार्य–धूम–मौजूद है।

**भावार्थ**—अग्निका कार्य–धूम–रहकर अग्निको ही जनावेगा, शीतस्पर्श ( ठंडेपन ) को नहीं।

**विरुद्धकारणोपलब्धिका उदाहरण।**

**नास्मिन् शरीरिणि सुखमस्ति हृदयशल्यात् ॥७४॥**

**भाषार्थ**—इस जीवमें सुख नहीं है क्योंकि सुखके विरोधी दुःखका कारण, हृदय–शल्य–मानसिकव्यथा (आधि)–मौजूद है।

भावार्थ—दुःखका कारण मौजूद है इसलिए वह दुःखको ही जनावेगा ।

विरुद्धपूर्वचरोपलब्धिका उदाहरण ।

**नोदेष्यति मुहूर्तान्ते शकटं रेवत्युदयात् ॥७५॥**

भाषार्थ—एकमुहूर्तके बाद रोहणीका उदय नहीं होगा क्योंकि रोहणी ( शकट ) के उदयसे विरुद्ध-अश्विनीनक्षत्र-के पूर्वचर ( पहले उदय होनेवाले ) रेवतीका उदय होरहा है ।

भावार्थ—रेवतीका उदय अश्विनीके उदयका पूर्वचर है इस लिए अश्विनीको ही जनावेगा ; कि उदय होगी ।

विरुद्धोत्तरचरोपलब्धिका उदाहरण ।

**नोद्गाद्भरणि मुहूर्तात्पूर्वं पुष्योदयात् ॥ ७६ ॥**

भाषार्थ—एकमुहूर्तकाल पहले भरणिका उदय नहीं हुआ क्योंकि भरणिके उदयसे विरुद्ध-पुनर्वसु-के उत्तरचर ( पीछे उदय होनेवाले ) पुष्यनक्षत्रका उदय होरहा है ।

भावार्थ—पुष्यनक्षत्रका उदय पुनर्वसुका उत्तरचर है इस लिए उसीके उदयको जनावेगा । कि होगया है ।

विरुद्धसहचरोपलब्धिका उदाहरण ।

**नास्त्यत्र भित्तौ परभागाभावोऽर्वाग्भागदर्शनात् ॥ ७७ ॥**

भाषार्थ—इस दीवालमें उसतरफके भागका अभाव नहीं है क्योंकि उसतरफके भागके अभावसे विरुद्ध—उसतरफके भागके सद्भाव—का साथी, इसतरफका भाग दीखरहा है ।

**भावार्थ**—उसतरफके भागके सद्भावका साथी मौजूद है अतः वह उसके सद्भावकोही कहेगा, कि उसतरफका भागभी मौजूद है।

**अब प्रतिषेधसाधिका अविरुद्धानुपलब्धिका वर्णन करते हैं :-**

**अविरुद्धानुपलब्धिः प्रतिषेधे सप्तधा स्वभावव्यापककार्यकारणपूर्वोत्तरसहचरानुपलम्भभेदात्** ॥७८॥

**भाषार्थ**—प्रतिषेध (गैरमौजूदगी) की साधिका अविरुद्धानुपलब्धिके सातभेद हैं। अविरुद्धस्वभावानुपलब्धि, अविरुद्धव्यापकानुपलब्धि, अविरुद्धकार्यानुपलब्धि, अविरुद्धकारणानुपलब्धि, अविरुद्धपूर्वचरानुपलब्धि, तथा अविरुद्धोत्तरचरानुपलब्धि, और अविरुद्धसहचरानुपलब्धि।

**भावार्थ**—यहांपर आप जिसका प्रतिषेध करना चाहते हैं उसीका अविरुद्धपना कहनेकी विवक्षा है।

**अविरुद्धस्वभावानुपलब्धिका उदाहरण।**

**नास्त्यत्र भूतले घटोऽनुपलब्धेः ॥ ७९ ॥**

**भाषार्थ**—इस भूतलमें घट नहीं है क्योंकि उसके स्वभाव (उपलब्ध होनेकी योग्यता) का अभाव है।

**भावार्थ**—घटके प्राप्तहोनेरूपस्वभावका भूतलमें अभाव है इसलिए वह घटके अभावको सिद्धकरता है। बस; यहां प्रतिषेध करने योग्य घटके, अविरुद्धस्वभावका अनुपलम्भ—अभाव—लियागया है।

**अविरुद्धव्यापकानुपलब्धिका उदाहरण।**

**नास्त्यत्र शिंशपा वृक्षानुपलब्धेः ॥ ८० ॥**

**भाषार्थ**—यहाँ शिंशपा ( सीसौन ) नहीं है क्योंकि उसके व्यापक-वृक्ष-का अभाव है।

**भावार्थ**—जो बहुत देशमें रहे उसको व्यापक कहते हैं। इस रीति से यहां वृक्ष व्यापक है, अब देखिए, कि व्यापक-वृक्ष-के विना शिंशपा ( व्याप्य ) हो ही नहीं सकता; इसलिए वृक्षका अभाव, उसके अभावको सिद्धकरता है।

**अविरुद्धकार्यानुपलब्धिका उदाहरण।**

**नास्त्यत्राप्रतिबद्धसामर्थ्योऽग्नि र्धूमानुपलब्धेः॥८१॥**

**भाषार्थ**—यहाँ विना सामर्थ्य ( शक्ति ) रुकी अग्नि नहीं है क्योंकि धूम नहीं पायाजाता है।

**भावार्थ**—सामर्थ्य ( शक्ति ) वाली अग्निके अविरुद्धकार्य-धूम-का यहाँ अभाव है इसलिए मालूम होता है कि यहाँ अग्नि नहीं है, अगर है; तो भस्म वगैरहसे ढकी हुई है।

**अविरुद्धकारणानुपलब्धिका उदाहरण।**

**नास्त्यत्र धूमोऽनग्नेः॥ ८२॥**

**भाषार्थ**—यहाँ धूम नहीं है क्योंकि अग्नि नहीं है।

**भावार्थ**—धूमके अविरुद्धकारण-अग्नि-का अभाव धूमके अभावको सिद्धकरता है।

**अविरुद्धपूर्वचरानुपलब्धिका उदाहरण।**

**न भविष्यति मुहूर्तान्ते शकटं कृतिकोदयानुपलब्धेः॥ ८३॥**

भावार्थ—एकमुहूर्तकालके बाद रोहणीका उदय नहीं होगा क्योंकि अभी कृतिकाका भी उदय नहीं हुआ है।

अविरुद्धोत्तरचरानुपलब्धिका उदाहरण।

**नोदगाद्भरणि र्मुहूर्तात्प्राक्तत एव ॥ ८४ ॥**

भाषार्थ—एकमुहूर्त पहले भरणीका उदय नहीं होचुका है क्योंकि अभी कृतिकाका भी उदय नहीं हुआ है।

भावार्थ—कृतिका का उदय भरणीके उदयसे पीछे होनेवाला है।

अविरुद्धसहचरानुपलब्धिका उदाहरण।

**नास्त्यत्र समतुलायामुन्नामो नामानुपलब्धेः ॥८५॥**

भाषार्थ—इस तराजूमें उन्नाम ( ऊँचापन ) नहीं है क्योंकि नाम ( नीचेपन ) का अभाव है।

भावार्थ—जब तखड़ी एकतरफ उठती है तब दूसरीतरफ नियमसेही नीची होजाती है इससे सिद्धहोता है कि उसका नीचापन और ऊंचापन साथही होता है। बस; जब नीचापन नहीं है तो वह कहेगा, कि ऊँचापनभी नहीं है क्योंकि वे दोनों एकसाथ होते हैं।

अब विधिसाधिका विरुद्धानुपलब्धिको कहते हैं:—

**विरुद्धानुपलब्धिर्विधौ त्रेधा विरुद्धकार्यकारणस्वभावानुपलब्धिभेदात् ॥ ८६ ॥**

भाषार्थ—विधिसाधिका विरुद्धानुपलब्धिके तीन भेद हैं। विरुद्धकार्यानुपलब्धि, विरुद्धकारणानुपलब्धि और विरुद्धस्वभावानुपलब्धि।

भावार्थ—यहाँपर साध्यसे विरुद्धके कार्यादिककी अनुपलब्धि विवंचित है ।

### विरुद्धकार्यानुपलब्धिका उदाहरण ।

**यथाऽस्मिन्प्राणिनि व्याधिविशेषोऽस्ति निरामयचेष्टानुपलब्धेः ॥ ८७ ॥**

भाषार्थ—जैसेकि इस प्राणीमें व्याधि (रोग) विशेष है अर्थात् कोई एकरोग है क्योंकि नीरोगचेष्टा नहीं पाईजाती है ।

भावार्थ—व्याधिविशेषसे विरुद्ध उसके अभावका कार्य, नहीं पायाजाता है इसलिए अवश्य कोई रोग है ।

### विरुद्धकारणानुपलब्धिका उदाहरण ।

**अस्त्यत्र देहिनि दुःखमिष्टसंयोगाभावात् ॥८८॥**

भाषार्थ—इस प्राणीमें दुःख है क्योंकि इष्टसंयोगका अभाव है।

भावार्थ—दुःखके विरोधी सुखके कारण, इष्टमित्रों तथा कुटुम्बिओं वगैरह का अभाव है इसलिए अवश्य दुःख है ।

### विरुद्धस्वभावानुपलब्धिका उदाहरण ।

**अनेकान्तात्मकं वस्त्वेकान्तस्वरूपानुपलब्धेः॥८९॥**

भाषार्थ—पदार्थ,अनेकधर्मवाले हैं क्योंकि उनमें नित्य आदिक एकान्तस्वरूपका अभाव है ।

भावार्थ—अनेकान्तसे विरुद्ध—नित्य क्षणिक आदि एकान्तस्वरूप—का वस्तुओंमें अभावहै इसलिए वे अनेकान्तात्मक सिद्धहोतीं हैं ।

यहां कोई कहता है कि जो परंपरासे साधन होसकता है उसको भी साधनोंमें गिनाना चाहिए। उत्तर यह है:—

**परम्परया सम्भवत्साधनमत्रैवान्तर्भावनीयम॥९०॥**

**भाषार्थ**—परम्परासे, जो साधन होसकते हैं उनका उपर्युक्त साधनोंमें ही अन्तर्भाव करना चाहिए।

उसीको उदाहरण-द्वारा पुष्ट करते हैं:—

**अभूदत्र चक्रे शिवकः स्थासात्॥ ९१ ॥**

**भाषार्थ**—इस चक्रपर शिवक होगया है क्योंकि स्थास मौजूद है।

**भावार्थ**—यह स्थासरूपहेतु परम्परासे शिवकका कार्य है। वह ऐसे है, कि जब कुंभार घटको बनाता है तब घटके पहले मिट्टी की बहुतसी पर्यायें होजातीं हैं बादमें घट होता है उन्हीं पर्यायोंमें से ये पर्यायें हैं जिनमें पहले शिवक, बादमें शिवकका कार्य छत्रक होता है उसके बादमें स्थास होता है इसलिए स्थास, शिवकका परम्परासे कार्य है साक्षात् नहीं। क्योंकि साक्षात्कार्य छत्रक है।

यह हेतु अविरुद्धकार्योपलब्धिमें गर्भित होता है:—

**कार्यकार्यमविरुद्धकार्योपलब्धौ॥ ९२ ॥**

**भाषार्थ**—कार्यके कार्यरुपहेतुका-परम्पराकार्यहेतुका-अविरुद्धकार्योपलब्धिमें अन्तर्भाव होता है।

उसीको उदाहरणसे पुष्ट करते हैं:—

**नास्त्यत्र गुहायां मृगक्रीड़नं मृगारिसंशब्दनात् कारणविरुद्धकार्यं विरुद्धकार्योपलब्धौ यथा॥९३॥**

**भाषार्थ**—इस गुफामें मृगकी क्रीड़ा नहीं है क्योंकि सिंहका शब्द होरहा है अर्थात् सिंह बोलरहा है। जिसप्रकार इस कारणविरुद्धकार्योपलब्धिका, विरुद्धकार्योपलब्धिमें अन्तर्भाव होता है; उसीप्रकार कार्यकार्यका, अविरुद्धकार्योपलब्धिमें अन्तर्भाव होता है।

**भावार्थ**—कारणविरुद्धकार्योपलब्धिको, इसतरह घटाना चाहिए, कि मृग-क्रीड़ाके कारण-मृग-के विरोधी-सिंह—का, शब्दरूप-कार्य पायाजाता है।

### व्युत्पन्नपुरुषोंके लिए प्रयोगका नियमः—

**व्युत्पन्नप्रयोगस्तु तथोपपत्त्याऽन्यथानुपपत्त्यैव वा ॥ ९४ ॥**

**भाषार्थ**—व्युत्पन्न-पण्डित-पुरुषोंके लिए, तथोपपत्ति—साध्यके सद्भावमें ही साधन का होना—या अन्यथाऽनुपपत्ति—साध्यके अभावमें साधन का न होना—इस नियमसे ही प्रयोग करना चाहिये।

### उसीको उदाहरण—द्वारा पुष्ट करते हैं:—

**अग्निमानयं देशस्तथैव धूमवत्वोपपत्ते धूमवत्वान्यथानुपपत्तेर्वा ॥९५ ॥**

**भाषार्थ**— यह प्रदेश अग्निवाला है; क्योंकि तथैव—अग्निके सद्भावमें ही—यह धूमवाला होसकता है अथवा यह हेतु समझना चाहिए, कि अग्निके अभावमें यह धूमवाला हो ही नहीं सकता है इसलिए इसमें अवश्य अग्नि है।

**भावार्थ**—इसमें यह बात दृढ़की गई है कि विद्वानोंके लिए उदाहरण वगैरहके प्रयोगकी आवश्यकता नहीं है।

**किसीका कहना है कि यदि उदाहरण नहीं दिया जायगा; तो वे लोग व्याप्तिका निश्चय कैसे करेंगे। उत्तर यह है:—**

**हेतुप्रयोगो हि यथाव्याप्तिग्रहणं विधीयते सा च तावन्मात्रेण व्युत्पन्नैरवधार्यते ॥ ९६ ॥**

**भाषार्थ**—जिसकी साध्यके साथ व्याप्ति निश्चित है ऐसे ही हेतुका प्रयोग कियाजाता है बस; उस हेतुके प्रयोगसे-उदाहरण आदिक के विना-ही बुद्धिमान् लोग व्याप्तिका निश्चय करलेते हैं।

**भावार्थ**—जबकि साध्यके विना नहीं होनेवाले हेतुका ही प्रयोग कियाजायगा, तो बुद्धिमान्लोग सुतरां यह निश्चय कर लेवेंगे, कि जहां यह हेतु होगा वहाँ यह साध्यभी अवश्य रहेगा।

**और :—**

**तावता च साध्यसिद्धिः ॥ ९७ ॥**

**भाषार्थ**—उस हेतु ( साध्यके विना नहीं होनेवाले हेतु ) के प्रयोगसे ही साध्यकी सिद्धि होजाती है।

**भावार्थ**—साध्यकी सिद्धिमें दृष्टान्त आदिककी कोई ज़रूरत नहीं होती।

**और पक्षका प्रयोग करना भी इसीसे सफल होजाता है:—**

**तेन पक्षस्तदाधारसूचनायोक्तः ॥ ९८ ॥**

**भाषार्थ**—इसीकारण, तदाधारसूचनाय-साध्यके विना नहीं होने वाले, साधनका आधार जतानेको-ही पक्षका प्रयोग करना कहा है।

**भावार्थ**— जब साध्यके विना नहीं होनेवाले हेतुसे ही साध्य

की सिद्धि होजाती है तब उस साधनका स्थान दिखानेके लिये पक्षका प्रयोग करना ठीक ही है ।

आगमके निमित्त और लक्षण:—

**आप्तवचनादिनिबन्धनमर्थज्ञानमागमः॥९९॥**

**भाषार्थ**—आप्तके वचन आदिकोंसे होनेवाले, पदार्थोंके ज्ञान को आगम कहतेहैं ।

**भावार्थ**—मोक्षमार्गके नेता, कर्मोंके विनाशक और सर्वज्ञ आत्माके वचनोंसे तथा अंगुली आदि संज्ञाओंसे होनेवाले, द्रव्य गुण और पर्यायोंके ज्ञानको आगमप्रमाण कहते हैं ।

**कोई कहता है कि आप्तके वचनोंसे वास्तव अर्थोंका ज्ञान होता है इसमें कारण क्या ? उत्तर यह है:—**

**सहजयोग्यतासङ्केतवशाद्धि शब्दादयो वस्तु-प्रतिपत्तिहेतवः ॥ १०० ॥**

**भाषार्थ**—अर्थोंमें तथा शब्दोंमें वाच्य-वाचक रूप एक स्वाभाविकी योग्यता है—शब्दोंमें वाचकरूप तथा अर्थोंमें वाच्यरूप योग्यता है, जिसमें संकेत होजानेसे शब्दादिक, पदार्थोंके ज्ञानमें हेतु होजाते हैं ।

**भावार्थ**— 'घट' शब्दमें कम्बुग्रीवादिवाले घड़ेको कहनेकी शक्ति है और उस घड़ेमें कहेजानेकी शक्ति है फिर, जिस पुरुषके ऐसा संकेत होजाता है कि यह शब्द घड़ेको कहता है, उस पुरुषको घटशब्द के सुननेमात्रसे ही घड़ेका ज्ञान होजाता है और शीघ्र ले भी आता है।

उसीका दृष्टान्त दिखाते हैं:—

**यथा मेर्वादयः सन्ति ॥ १०१ ॥**

**भाषार्थ**—जैसे मेरु आदिक हैं।

**भावार्थ**—जिसप्रकार मेरुशब्दके कहनेमात्रसे ही जम्बूद्वीपके मध्यवाले सुमेरुका ज्ञान होजाता है। इसीप्रकार सबजगह जाननाचाहिए।

## तीसेरपरिच्छेदका सारांश।

अविशदप्रतिभासवाले ज्ञानको परोक्षप्रमाण कहते हैं और वह अविशदता दूसरे ज्ञनोंकी सहायता लेनेसे आजाती है। भावार्थ—जो ज्ञान दूसरे ज्ञानकी सहायता लेता है वह परोक्ष कहाजाता है। उसके पांचभेद हैं। स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम। जिनके लक्षण और भेद पहले कहे जाचुके हैं। बस; इस परिच्छेदमें इन पांचोंका, या यों कहिये कि; परोक्षप्रमाणका वर्णन है।

इसप्रकार परोक्षप्रमाणका वर्णन हुआ।

इति तृतीयः परिच्छेदः।

---

**अब प्रमाणके विषयका निर्णय करते हैं:—**

**सामान्यविशेषात्मा तदर्थो विषयः॥ १॥**

**भाषार्थ**—सामान्य और विशेषस्वरूप अर्थात् द्रव्य-पर्याय स्वरूप पदार्थ, प्रमाणका विषय होता है।

**भावार्थ**—द्रव्यके बिना पर्याय और पर्यायके विना द्रव्य किसी भी प्रमाणका विषय नहीं होता है; किन्तु द्रव्यपर्यायरूप पदार्थ, प्रमाणका विषय होता है। एक २ को प्रमाणका विषय माननेमें बहुतसे दोष आते हैं जिनका कि अष्टसहस्त्रीमें पूर्ण खुलासा दिया है।

इसीमें हेतु देते हैं:—

**अनुवृत्तव्यावृत्तप्रत्ययगोचरत्वात्पूर्वोत्तराकार परिहारावाप्तिस्थितिलक्षणपरिणामेनार्थक्रियोपपत्तेश्च ॥ २ ॥**

**भाषार्थ**—सामान्य-विशेषस्वरूप पदार्थ प्रमाणका विषय होता है अथवा यों कहिये, कि द्रव्यपर्यायस्वरूप पदार्थ प्रमाणका विषय होता है; क्योंकि वह अनुवृत्तप्रत्यय तथा व्यावृत्तप्रत्ययका विषय होता है। दूसरा हेतु यह है कि अर्थके पूर्वआकारका विनाश और उत्तर-आकारका प्रादुर्भाव होता है जिनसे अर्थका स्थितिरूप परिणाम रहता है जिसके द्वारा कि उसमें अर्थ-क्रिया होती है अर्थात् उत्पाद और व्यय से रहनेवाले स्थितिरूप परिणामद्वारा ही अर्थमें अर्थ-क्रिया होती है।

**भावार्थ**—अनुवृत्त और व्यावृत्त इन दोनों प्रत्ययोंका विषय होताहै इस कारण, तथा उत्पाद-विनाशको प्राप्त होताहुआ भी अपनी स्थितिको क़ायम रखकर, अपने कार्य (अर्थ-क्रिया) को करताहै इसकारण, उभय स्वरूप अर्थात् सामान्य-विशेषस्वरूप पदार्थही, प्रमाणका विषय होता है। भावार्थ। अनुवृत्तप्रत्ययका विषय सामान्य होताहै और व्यावृत्तप्रत्ययका विषय विशेष होताहै तथा इसीप्रकार, द्रव्य (सामान्य) और पर्याय (विशेष) दोनोंरूप पदार्थमेंही अर्थ-क्रिया बनसकतीहै। केवल द्रव्य अथवा पर्यायमें नहीं। इससे सिद्ध होता है कि सामान्य-विशेषस्वरूप पदार्थही प्रमाणका विषय होता है। अर्थ-क्रिया-पदार्थोंके कार्यको कहतेहैं जैसे घटकी अर्थक्रिया जल-आहरण करना है। गौ गौ गौ इसप्रकारके प्रत्ययको अनुवृत्त-प्रत्यय और यह श्याम है यह चितकबरी है इसप्रकारके प्रत्ययको

व्यावृत्तप्रत्यय कहते हैं कहनेका तात्पर्य यह है कि यह वही है, ऐसी प्रतीतिको अनुवृत्तप्रत्यय और यह वह नहीं है ऐसी प्रतीतिको व्यावृत्तप्रत्यय कहते हैं।

### सामान्यके भेदः—

**सामान्यं द्वेधा तिर्यगूर्ध्वताभेदात् ॥ ३ ॥**

**भाषार्थ**—सामान्यके दो भेद हैं एक तिर्यक्सामान्य, दूसरा ऊर्ध्वतासामान्य।

### तिर्यक्सामान्यका स्वरूप और दृष्टान्तः—

**सदृशपरिणामस्तिर्यक् खण्डमुण्डादिषु गोत्ववत् ॥ ४ ॥**

**भाषार्थ**—परिणामोंकी सदृशताको तिर्यक्सामान्य कहते हैं। जैसे खाँड़ी मुण्डी शाबली आदि गायोंमें सदृशपरिणामरूप गोत्व रहता है।

**भावार्थ**—सबगायोंका समान परिणमन होता है इसलिए सब ही को एक गोशब्दसे पुकारते हैं इसीप्रकार ही सर्वत्र जानना। यहां गोत्व का अर्थ, सदृशपरिणाम लिया है। और वह प्रत्येक गायमें भिन्नता से रहता है-व्यक्तियोंके समानही संख्यावाला है, एक नहीं।

### ऊर्ध्वतासामान्यका स्वरूप और दृष्टान्तः—

**परापरविवर्तव्यापिद्रव्यमूर्ध्वता मृदिव स्थासादिषु ॥ ५ ॥**

**भाषार्थ**—पूर्व और उत्तर पर्यायोंमें रहनेवाले, द्रव्यको ऊर्ध्वता सामान्य कहतेहैं। जैसे स्थास कोश कुशूलआदि पर्यायोंमें मिट्टी रहती है। बस; वह मिट्टी ही ऊर्ध्वतासामान्यशब्दसे पुकारी जाती है।

विशेषके भेदः—

**विशेषश्च ॥ ६ ॥**

**भाषार्थ**—विशेषके भी दो भेद हैं। और वेः-

**पर्यायव्यतिरेकभेदात् ॥ ७ ॥**

**भाषार्थ**—एक पर्याय, दूसरा व्यतिरेक–ये हैं।

पर्यायविशेषका स्वरूप और उदाहरणः--

**एकस्मिन्द्रव्ये क्रमभाविनः परिणामः पर्याया आत्मनि हर्षविषादादिवत् ॥ ८ ॥**

**भाषार्थ**—एकद्रव्यमें क्रमसे होनेवाले परिणामों को पर्याय कहते है जैसे आत्मामें हर्ष और विषाद क्रमसे होते हैं।

व्यतिरेकविशेषका स्वरूप और उदाहरणः—

**अर्थान्तरगतो विसदृशपरिणामो व्यतिरेको गोमहिषादिवत् ॥ ९ ॥**

**भाषार्थ**—एकपदार्थकी अपेक्षासे दूसरे पदार्थमें रहनेवाले विसदृशपरिणामको व्यतिरेक कहते हैं जैसे गौसे महिष ( भैंसा ) में एक विलक्षण ( भिन्न ) ही परिणमन होता है।

## चौथे परिच्छेदका सारांश।

प्रमाण, सामान्य-विशेषस्वरूप पदार्थको विषय करता है अर्थात् सामान्य-विशेष, उभयरूप पदार्थको जानता है। एक रूप पदार्थको नहीं। क्योंकि उसमें बहुत दोष आते हैं। उस सामान्य तथा विशेष

के दो २ भेद है, जिनका पूर्वमें ही विस्तारसे वर्णन कर चुके हैं।

इसप्रकार विषय-परिच्छेद समाप्त हुआ।

इति चतुर्थः परिच्छेदः।

---

**अब प्रमाणके फलका निर्णय करते हैं:—**

**अज्ञाननिवृत्तिर्हानोपादानोपेक्षाश्चफलम्॥१॥**

**भाषार्थ**—प्रमाणका साक्षात्फल, अज्ञानकी निवृत्ति है तथा परम्पराफल, हान, उपादान और उपेक्षा है।

**भावार्थ**—प्रमाण द्वारा पहले अज्ञानकी निवृत्ति (जुदाई) होती है बादमें किसी वस्तुका त्याग अथवा ग्रहण होता है अथवा उसमें उपेक्षारूप मध्यस्थभाव होजाता है इसलिये इन तीनोंको परम्परा फल कहेत हैं और अज्ञानकी निवृत्तिको साक्षात्फल कहते हैं।

**उस फलकी व्यवस्था:—**

**प्रमाणादभिन्नं भिन्नं च॥ २॥**

**भाषार्थ**—वह फल, प्रमाणसे कथंचित् भिन्न तथा कथंचित् अभिन्न होता है।

**उनमेंसे अभिन्नपक्षका समर्थन करेत हैं:—**

**यः प्रमिमीते स एव निवृत्ताज्ञानो जहात्यादत्त उपेक्षते चेति प्रतीतेः॥ ३॥**

**भाषार्थ**—जो जानताहै उसीका अज्ञान दूर होताहै वही किसी वस्तुको छोड़ता अथवा ग्रहण करता है अथवा मध्यस्थ होजाता है

इसलिये एक ज्ञाताकी अपेक्षासे प्रमाण और फल दोनों अभिन्न हैं। और प्रमाण तथा फलकी भेदरूप प्रतीति होतीहै इसलिए दोनों भिन्न हैं।

## पांचवें परिच्छेदका सारांश।

प्रमाणके फलके दो भेद हैं एक साक्षात्फल दूसरा परम्परा फल। जिनमें अज्ञानकी निवृत्ति तो साक्षात्फल है और हान, उपादान, उपेक्षा, ये तीन परम्पराफल हैं। वे फल, प्रमाणसे कथंचित् भिन्न और कथंचित् अभिन्न होते हैं जिसका समर्थन अन्तिम सूत्रसे किया हुआ है।

भावार्थ—हान नाम छोड़नेका, उपादान नाम ग्रहण करनेका और उपेक्षा नाम मध्यस्थभावका है।

इसप्रकार पांचवां परिच्छेद समाप्त हुआ।

इति पंचमः परिच्छेदः।

---

## अब आभासोंका वर्णन करते हैं:—

**ततोऽन्यत्तदाभासम्॥ १॥**

**भाषार्थ**—ऊपर कहे हुए प्रमाणके स्वरूप, संख्या, विषय तथा फलसे विपरीत (उल्टे) प्रमाणस्वरूप आदिकोंको स्वरूपाभास, संख्याभास विषयाभास, और फलाभास कहतें हैं।

### स्वरूपाभासोंकी परिगणना:—

**अस्वसंविदितगृहीतार्थदर्शनसंशयादयः प्रमाणाभासाः॥ २॥**

**भाषार्थ**—अस्वसंविदित, गृहीतार्थ, दर्शन तथा संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय, इन ज्ञानोंको प्रमाणाभास कहते हैं।

**भावार्थ**—जो ज्ञान अपने स्वरूपको नहीं जानता, उसको अस्वसंविदित तथा जो ज्ञान किसी सच्चे ज्ञानद्वारा जाने हुए पदार्थ को जानता है, उसको गृहीतार्थ, और निर्विकल्पकज्ञान अर्थात् जिससे यह घट है यह पट है ऐसा निश्चय नहीं होता, उस ज्ञानको दर्शन कहते हैं। संशय आदिकका स्वरूप पहले कहा जाचुका है। ये सब ही प्रमाणाभास अर्थात् झूठेज्ञान हैं।

### इनको प्रमाणाभास कहनेमें हेतुः—

**स्वविषयोपदर्शकत्वाभावात् ॥ ३ ॥**

**भाषार्थ**—क्योंकि ये अपने विषयका निश्चय नहीं कराते हैं।

**भावार्थ**—अपने विषयमें अज्ञानकी निवृत्तिरूप फलको पैदा करनेवाले ज्ञानको प्रमाण कहते हैं परन्तु उपर्युक्त झूठे ज्ञानोंसे अज्ञान नहीं हटता है, इसलिए वे प्रमाण नहीं हो सकते हैं।

### इसी बातको दृष्टान्तोंसे दृढ़ करते हैं:—

**पुरुषान्तरपूर्वार्थगच्छत्तृणस्पर्शस्थाणुपुरुषादि ज्ञानवत् ॥ ४ ॥**

**भाषार्थ**—दूसरे पुरुषके ज्ञानकी भांति, अस्वसंविदितज्ञान, तथा पूर्वार्थ अर्थात् जानेहुए पदार्थके ज्ञानकी तरह, गृहीतार्थज्ञान, और चलतेहुए पुरुषके तृणस्पर्शके ज्ञानकी तुल्य, दर्शन तथा यह स्थाणु है वा पुरुष, ऐसे ज्ञानकी तरह संशयज्ञान, अपने २ विषय को यथार्थपनेसे विषय नहीं करते हैं आदि पदसे सीपमें चांदीके ज्ञानकी नाँई विपर्ययज्ञान और चलतेहुए तृणस्पर्शके ज्ञानकी नाँई अनध्यवसाय भी अपने विषयको निश्चयरूपसे नहीं जानते हैं इस लिए वे प्रमाणाभास हैं।

अब सन्निकर्षके प्रमाणपनेका दृष्टान्तसे निषेध करते हैं:—

**चक्षूरसयोर्द्रव्ये संयुक्तसमवायवच्च ॥ ५ ॥**

**भाषार्थ**—जिसप्रकार द्रव्यमें चक्षु और रसका संयुक्तसमवाय होता हुआ भी प्रमाण नहीं होता है—ज्ञानरूपी फलको पैदा नहीं करता है, उसीतरह द्रव्यमें चक्षु और रूपका संयुक्तसमवाय भी ज्ञानरूपी फलको पैदा नहीं कर सकता है। इसलिए सन्निकर्ष, प्रमाण नहीं है।

प्रत्यक्षाभासका स्वरूप:—

**अवैशद्ये प्रत्यक्षं तदाभासं बौद्धस्याकस्माद्धूमदर्शनाद्वह्निविज्ञानवत् ॥ ६ ॥**

**भाषार्थ**—अविशदज्ञानको प्रत्यक्ष मानना प्रत्यक्षाभास है जैसेकि अकस्मात् धूम देखनेसे पैदा हुए बन्हिके ज्ञानको बौद्धलोग, प्रत्यक्ष मानते हैं। बस; यह उनका प्रत्यक्ष नहीं है; किन्तु प्रत्यक्षाभास है।

परोक्षाभासका स्वरूप:—

**वैशद्येऽपि परोक्षं तदाभासं मीमांसकस्य करण ज्ञानवत् ॥ ७ ॥**

**भाषार्थ**— विशदज्ञानको परोक्ष मानना परोक्षाभास है जैसे कि मीमांसक, करणज्ञानको परोक्ष मानते हैं बस, यह उनका परोक्ष नहीं है; किन्तु परोक्षाभास है।

**भावार्थ**—जिसके द्वारा अज्ञान हटता है उसको करणज्ञान कहते हैं और अज्ञानके हटनेको फलज्ञान कहते हैं।

परोक्षाभासके भेदोंमेंसे स्मरणाभास इसप्रकार है:—

**अतस्मिंस्तदिति ज्ञानं स्मरणाभासं जिनदत्ते स देवदत्तो यथा ॥ ८ ॥**

**भाषार्थ**—जिस पदार्थका पहले कभी धारणारूप अनुभव नहीं हुआ था, उसके स्मरणको स्मरणाभास कहते हैं जैसे कि—जिनदत्तका स्मरण करके कहना, कि वह देवदत्त। यहां देवदत्तको कभी देखा नहीं था और स्मरण किया है, इसलिए वह स्मरण झूठा है।

प्रत्यभिज्ञानाभासका स्वरूप:—

**सदृशे तदेवेदं तस्मिन्नेव तेन सदृशं यमलकवदित्यादि प्रत्यभिज्ञानाभासम् ॥ ९ ॥**

**भाषार्थ**—सदृश पदार्थमें कहना कि यह तो वही पदार्थ है जिसे पहले देखा था, और उसी पदार्थमें कहना कि यह उसके सदृश है। जैसा कि, एकसाथ पैदा हुए दो मनुष्योंमें, उल्टा ज्ञान हो जाता है बस; इन दोनों ज्ञानोंको प्रत्यभिज्ञानाभास कहते हैं।

**भावार्थ**—पहले सादृश्य एकत्वादि प्रत्यभिज्ञान बतलाए थे बस; उन्हींके विपर्यय होनेसे ये प्रत्यभिज्ञान झूठे कहे जाते हैं।

तर्काभासका स्वरूप:—

**असम्बद्धे तज्ज्ञानं तर्काभासम् ॥ १० ॥**

**भाषार्थ**—जिन पदार्थोंकी परस्परमें व्याप्ति नहीं है उनमें होनेवाले व्याप्ति ( अविनाभावसम्बन्ध ) के ज्ञानको तर्काभास कहते हैं।

**भावार्थ**—जैसे कि चैत्रके पुत्रोंकी श्यामपनेके साथ व्याप्ति

नहीं है फिर भी कहना कि जो २ चैत्रका पुत्र होता है वह २ काला होता है। यह ज्ञान, तर्क नहीं है; किन्तु झूठा तर्क है।

अनुमानाभासका स्वरूप:—

**इदमनुमानाभासम् ॥ ११ ॥**

**भाषार्थ**—नीचेके सूत्रोंमें कहे हुए सब अनुमानाभास हैं।

**भावार्थ**—अवयवाभासोंके दिखानेसे अनुमान-स्वरूपाभास का वर्णन होजाता है क्योंकि अवयवोंको छोड़कर अनुमान, भिन्न कोई भी वस्तु नहीं हैं।

पक्षाभासका स्वरूप:—

**तत्रानिष्टादिः पक्षाभासः ॥ १२ ॥**

**भाषार्थ**—उन अवयवाभासोंमेंसे, अनिष्ट, बाधित और सिद्ध, इन तीनोंही पक्षोंको पक्षाभास कहते हैं।

अब अनिष्टपक्षाभासको स्पष्ट करते हैं:—

**अनिष्टो मीमांसकस्यानित्यः शब्दः ॥ १३ ॥**

**भाषार्थ**—मीमासकोंको अनित्य शब्द अनिष्ट हैं—इष्ट नहीं हैं; क्योंकि उन्होंने शब्दको नित्य माना है।

**भावार्थ**—अगर मीमांसक, पक्ष बोलें कि शब्द अनित्य होता है तो वहां यही उत्तर पर्याप्त होगा, कि तुम्हारा पक्ष अनिष्ट नामका पक्षाभास है।

सिद्धपक्षाभासका उदाहरण:—

**सिद्धः श्रावणः शब्दः ॥ १४ ॥**

भाषार्थ—शब्द कर्ण इन्द्रियका विषय होता है, यह पक्ष सिद्ध नामका पक्षाभास है क्योंकि जब शब्दका प्रत्यक्षही होगया फिर पक्ष बनाकर सिद्ध करना निरर्थक है।

बाधितपक्षाभासके भेद:—

**बाधित:प्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनैः ॥१५॥**

भाषार्थ—बाधित पक्षाभासके प्रत्यक्षबाधित, अनुमानबाधित, आगमबाधित, लोकबाधित और स्ववचनबाधित, ये पांच भेद हैं।

प्रत्यक्षबाधितका उदाहरण:—

**तत्र प्रत्यक्षबाधितो यथा अनुष्णोऽग्निर्द्रव्यत्वा ज्जलवत् ॥ १६ ॥**

भाषार्थ—उनमेंसे प्रत्यक्षबाधितका उदाहरण इसप्रकार है कि अग्नि ठंडी होती है क्योंकि वह द्रव्य है जो द्रव्य होता है वह ठंडा होता है जैसे जल।

भावार्थ—यहां "अग्नि ठंडी होती है" यह पक्ष, स्पार्शन प्रत्यक्षसे बाधित है क्योंकि छूनेसे अग्नि गर्म मालूम होती है।

अनुमानबाधितका उदाहरण:—

**अपरिणामी शब्दः कृत्वकत्वाद्घटवत् ॥१७॥**

भाषार्थ—शब्द अपरिणामी होता है; क्योंकि वह किया जाता है जो किया जाता है वह अपरिणामी होता है जैसे घट।

भावार्थ—यहां "शब्द परिणामी होता है क्योंकि वह किया जाता है जो किया जाताहै वह परिणामी होता है जैसे घट। इस अनुमानसे, उपर्युक्त पक्षमें बाधा आतीहै इसलिए वह, अनुमानबाधित है।

आगमबाधितका उदाहरण:—

**प्रेत्यासुखप्रदो धर्मः पुरुषाश्रितत्वादधर्मवत्॥१८॥**

**भाषार्थ**—धर्म, (पुण्य) परलोकमें दुःखका देनेवाला होता है क्योंकि वह पुरुषके आश्रयसे होता है जो २ पुरुषके आश्रयसे होता है वह २ दुःखदायी होता है जैसे अधर्म ( पाप ) ।

**भावार्थ**—यह पक्ष आगमसे बाधित है क्योंकि आगममें धर्म सुखका देनेवाला और अधर्म दुःखका देनेवाला बतलाया गया है। यद्यपि दोनों पुरुषके आश्रयसे होते है तथापि वे भिन्न स्वभाववाले हैं ।

लोकबाधितका उदाहरण:—

**शुचि नरशिरःकपालं प्राण्यंगत्वाच्छंखशुक्तिवत् ॥ १९ ॥**

**भाषार्थ**—मनुष्यके शिरका कपाल (खोपड़ी) पवित्र होता है; क्योंकि वह प्राणीका अंग है जो प्राणीका अंग होता है वह पवित्र होता है जैसे शंख और सीप।

**भावार्थ**—यह पक्ष लोकबाधित है क्योंकि लोकमें प्राणीका अंग होते हुए भी कोई चीज़ पवित्र और कोई अपवित्र मानी गई है।

स्ववचनबाधितका उदाहरण:—

**माता मे बन्ध्या पुरुषसंयोगेऽप्यगर्भत्वात् प्रसिद्धबन्ध्यावत् ॥ २० ॥**

**भाषार्थ**—मेरी माता बन्ध्या है क्योंकि पुरुषका संयोग होने परभी उसके गर्भ नहीं रहता है जिसके पुरुषका संयोग होनेपर भी गर्भ नहीं रहता है वह बन्ध्या कही जाती है जैसे प्रसिद्धबन्ध्यास्त्री ।

**भावार्थ**—स्वयं मौजूद है माता भी कह रहा है फिर कहता है कि मेरी माता बन्ध्या है यह पक्ष उसीके वचन (मेरीमाता) से बाधित है।

### हेत्वाभासके भेदः—

**हेत्वाभासा असिद्धविरुद्धानैकान्तिकाकिञ्चित्कराः ॥ २१ ॥**

**भाषार्थ**—असिद्ध, विरुद्ध, अनैकान्तिक और अकिञ्चित्कर-ये चार, हेत्वाभासके भेद हैं।

### असिद्धहेत्वाभासके भेद और स्वरूपः—

**असत्सत्तानिश्चयोऽसिद्धः ॥ २२ ॥**

**भाषार्थ**—जिसकी सत्ताका अभावहो उसको स्वरूपासिद्ध और जिसका निश्चय न हो उसको संदिग्धासिद्ध कहते हैं। बस; स्वरूपासिद्ध और सँदिग्धासिद्ध, ये ही असिद्धहेत्वाभासके दो भेद हैं।

### स्वरूपासिद्धका उदाहरणः—

**अविद्यमानसत्ताकः परिणामी शब्दश्चाक्षुषत्वात् ॥ २३ ॥**

**भाषार्थ**—शब्द परिणामी होताहै क्योंकि वह चक्षुसे जाना जाताहै।

**भावार्थ**—"शब्द चक्षुसे जाना जाता है यह हेतु स्वरूपसे ही असिद्ध है क्योंकि शब्द, नेत्रसे नहीं; किन्तु कर्णसे जाना जाता है।

### अब इसके स्वरूपासिद्ध होनेमें हेतु देते हैं:—

**स्वरूपेणासत्वात् ॥ २४ ॥**

**भाषार्थ**—यह स्वरूपसे ही ठीक नहीं है कि शब्द चक्षुसे जाना जाता है । किन्तु शब्द कर्णसे जाना जाता है ।

**संदिग्धासिद्धका उदाहरण:—**

**अविद्यमाननिश्चयो मुग्धबुद्धिं प्रत्यग्निरत्र धूमात् ॥ २५ ॥**

**भाषार्थ**—मुग्धबुद्धि अर्थात् किसी अज्ञानपुरुषसे कहना कि यहां अग्नि है क्योंकि धूम है । यह धूमहेतु संदिग्धासिद्ध है ।

**धूमहेतुके संदिग्धासिद्ध होनेमें हेतु:—**

**तस्य बाष्पादिभावेन भूतसंघाते सन्देहात् ॥२६॥**

**भाषार्थ**—मुग्धबुद्धिके प्रति इसलिए 'धूम' हेतु संदिग्धासिद्ध है कि उसे भूतसंघातमें[1] वाष्पादि देखनेसे सन्देह होजाता है कि यहां भी अग्नि है—अथवा होगी ।

**और भी असिद्धहेत्वाभासका भेद दिखाते हैं:—**

**सांख्यं प्रति परिणामी शब्दः कृतकत्वात् ॥ २७ ॥**

**भाषार्थ**—सांख्यके प्रति कहना कि शब्द परिणामी होता है क्योंकि वह किया जाता है । यह हेतु उसके प्रति असिद्ध है ।

**क्योंकि:—**

**तेनाज्ञातत्वात् ॥ २८ ॥**

---

१ भूतसंघातसे चूल्हेसे उतारी हुई बटलोई लेना चाहिए; क्योंकि उसमें पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, चारोंही का समुदाय रहता है और भाप भी निकलती रहती है ।

**भाषार्थ**—सांख्य कृतकता ( कृतकपने ) को मानता ही नहीं है क्योंकि उसके यहां आविर्भाव और तिरोभाव ही प्रसिद्ध हैं।

## विरुद्धहेत्वाभासका स्वरूप और उदाहरण:—

**विपरीतनिश्चिताविनाभावो विरुद्धोऽपरिणामी शब्दः कृतकत्वात् ॥ २९ ॥**

**भाषार्थ**—साध्यसे विपरीतके साथ जिसहेतुकी व्याप्ति हो उस हेतुको विरुद्धहेत्वाभास कहते हैं जैसे शब्द अपरिणामी होता है क्योंकि वह कृतक अर्थात् कियाजाता है। इस हेतुकी अपरिणामी पनेसे विपरीत परिणामीपनेके साथ व्याप्ति है।

**भावार्थ**—इस अनुमानमें अपरिणामी, साध्य है परन्तु कृतकत्वहेतु उसकेसाथ व्याप्ति नहीं रखता है किन्तु उससे उल्टे परिणामी पनेके साथ व्याप्ति रखता है इसलिए वह विरुद्ध है।

## अनैकान्तिकहेत्वाभासका स्वरूप:—

**विपक्षेऽप्यविरुद्धवृत्तिरनैकान्तिकः ॥ ३० ॥**

**भाषार्थ**—जो हेतु, पक्ष और सपक्षमें रहता हुआ विपक्ष में भी रहे उसको अनैकान्तिक कहते हैं।

**भावार्थ**—संदिग्धसाध्यवाले धर्मीको पक्ष कहते हैं तथा साध्यके समानधर्मवाले धर्मीको सपक्ष कहते हैं और साध्यसे विरुद्ध धर्मवाले धर्मीको विपक्ष कहते हैं। बस; जो हेतु इन तीनोंमें रहता है उसे अनैकन्तिक-व्यभिचारी-कहते हैं। उसके दो भेद हैं एक— शंकितविपक्षवृत्ति दूसरा निश्चितविपक्षवृत्ति।

निश्चितविपक्षवृत्तिका उदाहरण:—

**निश्चितवृत्तिरनित्यः शब्दः प्रमेयत्वात् घट-वत् ॥ ३१ ॥**

**भाषार्थ**—शब्द अनित्य होता है क्योंकि वह प्रमेय है जो प्रमेय होता है वह अनित्य होता है जैसे घट। यह प्रमेय हेतु, पक्ष शब्द में, सपक्ष घटमें, रहताहुआ विपक्ष आकाशमें भी रहता है इस लिए व्यभिचारी है परन्तु उसका विपक्षमें रहना निश्चित है इसलिए उसको निश्चितविपक्षवृत्ति कहते हैं।

**इसीको पुष्ट करते हैं:—**

**आकाशे नित्येऽप्यस्य निश्चयात् ॥ ३२ ॥**

**भाषार्थ**—नित्य आकाशमें ( विपक्षमें ) भी इसका ( प्रमेय हेतुका ) निश्चय है इसलिए प्रमेयहेतु निश्चित व्यभिचारी है।

शंकितविपक्षवृत्तिका उदाहरण:—

**शंकितवृत्तिस्तु नास्ति सर्वज्ञो वक्तृत्वात् ॥ ३३ ॥**

**भाषार्थ**—सर्वज्ञ नहीं है क्योंकि वह बोलनेवाला है। परन्तु "बोलनेवाला" यह हेतु रहजाय और सर्वज्ञपना भी रहजाय, इन दोनों बातोंमें कोई भी विरोध नहीं है इसलिए इस हेतुको शंकितव्यभिचारी कहते हैं। अर्थात् इसकी विपक्षमें रहनेकी शंका है।

**सो ही कहते हैं:—**

**सर्वज्ञत्वेन वक्तृत्वाविरोधात् ॥ ३४ ॥**

**भाषार्थ**—सर्वज्ञपनेके साथ वक्तापनेका कोई विरोध नहीं है इसलिए सर्वज्ञके सद्भावरूपविपक्षमें भी यह हेतु (वक्तृत्व) रह सकता है।

**आकिञ्चित्करहेत्वाभासका स्वरूप:—**

**सिद्धे प्रत्यक्षादिबाधिते च साध्ये हेतुराकिञ्चित्करः ॥ ३५ ॥**

**भाषार्थ**—साध्यके सिद्ध होनेपर तथा प्रत्यक्षआदि प्रमाणों से बाधित होनेपर, हेतु कुछभी नहीं कर सकता है इसलिए वह अकिञ्चित्कर कहा जाता है।

**सिद्धसाध्यवाले अकिञ्चित्करका उदाहरण:—**

**सिद्धः श्रावणः शब्दः शब्दत्वात् ॥ ३६ ॥**

**भाषार्थ**—शब्द, श्रावणज्ञानका विषय होता है क्योंकि वह शब्द है।

**इसके अकिञ्चित्कर होनेमें हेतु:—**

**किञ्चिदकरणात् ॥ ३७ ॥**

**भाषार्थ**—यह शब्दत्व हेतु कुछ भी नहीं करता है क्योंकि शब्दका श्रावण ज्ञानके द्वारा जाना जाना सिद्ध ही है।

**इसीको दृष्टान्तसे पुष्ट करते हैं:—**

**यथाऽनुष्णोऽग्नि द्रव्यत्वादित्यादौ किञ्चित्कर्तुमशक्यत्वात् ॥ ३८ ॥**

**भाषार्थ**—जिसप्रकार, अग्नि ठंडी होती है क्योंकि वह द्रव्य है, इत्यादि अनुमानोंमें कुछ भी नहीं करसकनेसे हेतु (द्रव्यत्व आदि)

अकिञ्चित्कर कहे जाते हैं इसीप्रकार ऊपरके सूत्रमें जानना चाहिए।

## अकिञ्चित्करहेत्वाभासके प्रयोगकी उपयोगिता :—

**लक्षणे एवासौ दोषो व्युत्पन्नप्रयोगस्य पक्षदोषेणैव दुष्टत्वात् ॥ ३८ ॥**

**भावार्थ**—हेतुके लक्षणके विचारके समयमें ही अकिञ्चित्कर नामका दोष देना चाहिए, वादकालमें नहीं। क्योंकि व्युत्पन्न पुरुषोंका प्रयोग, पक्षके दोषोंसे ही दुष्ट होजाता है।

## हेत्वाभासोंका सारांश।

झूठे हेतुको हेत्वाभास कहते हैं उसके चार भेद हैं असिद्ध, विरुद्ध, अनैकान्तिक और अकिञ्चित्कर। जिनमें असिद्धके भी दो भेद हैं एक स्वरूपासिद्ध दूसरा सँदिग्धासिद्ध। उनमें जिसके अभावका निश्चय हो उसको स्वरूपासिद्ध कहते हैं और जिसके सद्भावमें सन्देह हो उसको संदिग्धासिद्ध कहते हैं। साध्यसे विपरीत धर्मके साथ जिसकी व्याप्तिका निश्चय हो उसको विरुद्ध कहते हैं और विपक्षमें भी जो रहजाय उसको अनैकान्तिक ( व्यभीचारी ) कहते हैं उसके भी "जिसका विपक्षमें रहना निश्चित हो वह निश्चितव्यभिचारी, और जिसका विपक्षमें रहना शंकित हो वह शंकित व्यभिचारी, ऐसे दो भेद हैं और जो हेतु, साध्यकी सिद्धिमें कुछ भी मदद न देसकें उस हेतुको अकिञ्चित्कर कहते हैं।

## अन्वयदृष्टान्ताभासके भेद :—

**दृष्टान्ताभासा अन्वयेऽसिद्धसाध्यसाधनोभयाः ॥ ४० ॥**

**भाषार्थ**—अन्वयदृष्टान्ताभासके तीन भेद हैं साध्यविकल, साधनविकल और उभयविकल।

तीनोंके उदाहरण :—

**अपौरुषेयः शब्दोऽमूर्तत्वादिन्द्रियसुखपरमाणुघटवत् ॥ ४१ ॥**

**भाषार्थ**—शब्द अपौरुषेय होता हैं अर्थात् पुरुषका किया नहीं होता है; क्योंकि वह अमूर्त होता है जैसे कि इन्द्रियसुख। यह इन्द्रियसुख दृष्टान्त, साध्य, अपौरुषेयपनेसे रहित है क्योंकि इन्द्रियसुख पुरुषकृत ही होता है, इसीप्रकार परमाणुका दृष्टान्त, साधनविकल है क्योंकि परमाणु मूर्त अर्थात् रूप, रस, गंध और स्पर्श वाला होता है तथा घटका दृष्टान्त, उभय ( साध्यसाधन ) विकल है क्योंकि घट मूर्त होता है और पुरुषकृत भी होता है।

**भावार्थ**—जो दृष्टान्त, अन्वयव्याप्ति दिखाकर दिया जाता है उसको अन्वयदृष्टान्त कहते हैं उस व्याप्तिमें दो वस्तुएँ होती हैं एक साध्य दूसरा साधन। फिर जिस दृष्टान्तमें साध्य न होगा वह साध्यसे, और जिसमें साधन न होगा वह साधनसे, तथा जिसमें दोनों न होंगे, वह दोनोंसे रहित कहा जायगा।

और भी अन्वयदृष्टान्ताभास होता है:—

**विपरीतान्वयश्च यदपौरुषेयं तदमूर्तम् ॥४२॥**

**भाषार्थ**—पूर्वोक्तअनुमानेंम, जो अपौरुषेय होता है वह अमूर्त होता है, इसप्रकार उल्टे अन्वयके दिखानेको भी अन्वयदृष्टान्ताभास कहते हैं।

क्योंकिः—

**विद्युदादिनाऽतिप्रसंगात् ॥ ४३ ॥**

**भाषार्थ**—बिजली आदिकसे अतिप्रसंग होताहै अर्थात् बिजली अपौरुषेय है इसलिए अमूर्तभी होनी चाहिए; परन्तु है नहीं। बस, इसीको अतिप्रसंग कहते हैं कि जो वस्तु जैसी है तो नहीं; परन्तु उसका वैसी माननेका मौका आजाय।

व्यतिरेकदृष्टान्ताभासके भेद और उदाहरणः—

**व्यतिरेकेऽसिद्धतद्व्यतिरेकाः परमाण्विन्द्रियसुखाकाशवत् ॥ ४४ ॥**

**भाषार्थ**—व्यतिरेकदृष्टान्ताभासके तीन भेद हैं व्यतिरेक द्वारा साध्यविकल, साधनविकल और उभयविकल। पूर्वके अनुमानमें ही व्यतिरेकसे परमाणुका दृष्टान्त, साध्यविकल है क्योंकि वह पुरुषकृत नहीं है तथा इन्द्रियसुखका दृष्टान्त, साधनविकल है क्योंकि वह मूर्त नहीं है और आकाशका दृष्टान्त, उभयविकल है क्योंकि वह पुरुषकृत नहीं है और मूर्त भी नहीं है।

**भावार्थ**—जो दृष्टान्त व्यतिरेकव्याप्ति अर्थात् साध्यके अभावमें साधनका अभाव दिखाकर दिया जाता है उसको व्यतिरेकदृष्टान्त कहते है उस व्यतिरेकव्याप्तिमें दो वस्तुएं होतीं हैं एक साध्याभाव, दूसरा साधनाभाव। फिर जिस दृष्टान्तमें साध्याभाव नहीं होगा वह साध्यसे, और जिसमें साधनाभाव नहीं होगा वह साधन से, तथा जिसमें दोनों नहीं होंगे, वह उभयसे रहित कहा जायगा। इनको साध्याभाव इत्यादिसे विकल न कहकर साध्य आदिसे विकल,

इसलिए कहते हैं कि व्यतिरेकव्याप्तिमें साध्याभावही साध्य, और साधनाभाव ही साधन माना जाता है।

**और भी व्यतिरेकदृष्टान्ताभास होता है:—**

**विपरीतव्यतिरेकश्च यन्नामूर्तं तन्नापौरुषेयम् ॥४५॥**

**भाषार्थ**—पूर्वोक्त अनुमानमें, व्यतिरेक दिखाते हुए "जो अमूर्त नहीं होता है वह अपौरुषेय भी नहीं होता है" इसप्रकार उल्टा व्यतिरेक दिखा देना भी व्यतिरेकदृष्टान्ताभास है।

**भावार्थ**—व्यतिरेकमें सर्वत्र साध्याभावमें साधनाभाव दिखाया जाता है बस; इससे उल्टा दिखानेमें बिजली आदिकेक साथ पूर्वकी तरह ही अतिप्रसंग होता है इसलिए वह व्यतिरेकदृष्टान्ताभास है।

**अब बालप्रयोगाभासको दिखाते हैं:—**

**बालप्रयोगाभासः पञ्चावयवेषु कियद्धीनता ॥४६॥**

**भाषार्थ**—प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन इन पांच अनुमानके अवयवोंमेंसे कितने ही कम अवयवोंका प्रयोग करना बालप्रयोगाभास है अर्थात् बालकोंके लिए झूठाप्रयोग है।

**भावार्थ**—आगे स्वयंही ग्रन्थाकार कहेंगे कि कम अवयवों वाले प्रयोगसे बालकोंको ज्ञान नहीं होसकता; इसलिए वह प्रयोग उनके लिए प्रयोगाभास कहा जाता है।

**उसीको स्पष्ट करते हैं:—**

**अग्निमानयंदेशो धूमवत्वाद् यदित्थं तदित्थं यथा महानसः ॥ ६७ ॥**

**भाषार्थ**—यह प्रदेश अग्निवाला है; क्योंकि धूमवाला है।

जो धूमवाला होता है वह अग्निवाला भी होता है, जैसे रसोईघर।

अथवा:—

**धूमवांश्चायमिति वा ॥ ४८ ॥**

**भाषार्थ**—अथवा इतना और कहना कि यह भी धूमवाला है।

**भावार्थ**—ऊपरके सूत्रमें तीन ही अवयव कहे गये हैं और नीचेके सूत्रमें उपनय मिलाकर चार अवयव दिखाये गये हैं; परन्तु कम अवयव दोनोंमें हैं; इसलिए वे दोनों ही बालप्रयोगाभास हैं।

उल्टा प्रयोग करना भी बालप्रयोगाभास होता है:—

**तस्मादग्निमान् धूमवांश्चायम् ॥ ४९ ॥**

**भाषार्थ**—धूमवाला होनेसे अग्निवाला है, और यह भी धूम वाला है।

**भावार्थ**—दृष्टान्त बोलकर उपनय बोलना चाहिए, कि उसी तरह यह भी धूमवाला है फिर निगमन बोलना चाहिए, कि इसीसे यह अवश्यही अग्निवाला है। परन्तु इस सूत्रम उपनय और निगमन बिपरीततासे कहे गये हैं इसलिए यह ( सूत्र ) बालप्रयोगाभास है।

इसीमें हेतु देते हैं:—

**स्पष्टतया प्रकृतप्रतिपत्तेरयोगात् ॥ ५० ॥**

**भाषार्थ**—इन सब प्रयोगोंसे प्रकृत पदार्थोंका अर्थात् प्रकरणमें आए हुए पदार्थोंका स्पष्ट ज्ञान नहीं होता है।

**भावार्थ**—ऊपरके कहे हुए सब प्रयोग इसलिए झूंठे हैं कि उनसे पदार्थोंका ठीक २ ज्ञान नहीं होता है।

आगमाभासका स्वरूप:—

**रागद्वेषमोहाक्रान्तपुरुषवचनाज्जातमागमाभासम् ५१**

**भाषार्थ**—रागी द्वेषी और अज्ञानी मनुष्योंके वचनोंसे उत्पन्न हुए आगमको आगमाभास कहते हैं।

**उसीका दृष्टान्त देते हैं:—**

**यथा नद्यास्तीरे मोदकराशयः सन्ति धावध्वं माणवकाः ॥ ५२ ॥**

**भाषार्थ**—जैसे कि "बालको! दौड़ो, नदीके किनारे बहुतसे लड्डू पड़े हुए हैं" ये वचन हैं।

**दूसरा यह है:—**

**अङ्गुल्यग्रे हस्तियूथशतमास्त इति च ॥ ५३ ॥**

**भाषार्थ**—और जिसप्रकार यह है कि अंगुलीके आगेके हिस्सेपर हाथियोंके सौ समुदाय रहते हैं।

**भावार्थ**—सब वस्तुएं सब जगह हैं, इसप्रकारके सिद्धान्तको माननेवाले सांख्योंका, यह सिद्धान्त है।

**इनके आगमाभास होनेमें हेतु:—**

**विसंवादात् ॥ ५४ ॥**

**भाषार्थ**—विवाद होनेके कारण, ये आगमाभास हैं। अर्थात् इनमें लोग विवाद करते हैं इसलिए ये आगम, झूँठे हैं।

**भावार्थ**—इनसे लोगोंको यथार्थ पदार्थोंका निर्णय नहीं होता; इसलिए मनमाना गढ़न्त गढ़ते हुए एक दूसरेके विरुद्ध कहकर विवाद किया करते हैं। इसलिए ये आगम झूँठे हैं।

इसप्रकार प्रमाण-स्वरूपाभासका वर्णन हुआ।

अब प्रमाण संख्याभासका वर्णन करते हैं :—

**प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणमित्यादि संख्याभासम् ॥५५॥**

**भाषार्थ**—प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण है इत्यादि ५७वें में सूत्रसे कहे हुए सर्व ही संख्याभास हैं।

उसीमें हेतु दिखलाते हैं :—

**लौकायतिकस्य प्रत्यक्षतः परलोकादिनिषेधस्य परबुद्ध्यादेश्चासिद्धेरतद्विषयत्वात् ॥ ५६ ॥**

**भाषार्थ**—चार्वाकका प्रत्यक्षही एक प्रमाण मानना, इसलिए संख्याभास है कि केवल प्रत्यक्षसे परलोक आदिका निषेध और परकी बुद्धि आदिकी सिद्धि नहीं होसकती है क्योंकि वे प्रत्यक्षके विषय नहीं है। और ऐसा नियम है कि जो जिसको विषय नहीं करता; वह उसका निषेध तथा विधान भी नहीं कर सकता है।

अब उसीको दृष्टान्तसे दृढ़ करते हैं :—

**सौगतसांख्ययौगप्राभाकरजैमिनीयानां प्रत्यक्षानुमानागमोपमानार्थापत्त्याभावैरेकैकाधिकैर्व्याप्तिवत् ५७**

**भाषार्थ**—जिसप्रकार प्रत्यक्ष-अनुमानको आदि लेकर एक२ अधिक प्रमाणसे सौगत ( बौद्ध ) सांख्य, यौग, प्राभाकर तथा जैमिनीय, व्याप्ति ( अविनाभाव ) का निर्णय नहीं करसकते हैं, उसीतरह चार्वाक भी एक प्रत्यक्ष प्रमाणसे ही परलोक आदिके निषेधको तथा परकी बुद्धि आदिकी सिद्धिको, नहीं करसकता है।

**भावार्थ**—सौगत २ सांख्य ३ योग ४ प्राभाकर ५ और जैमिनीय ६ प्रमाण मानते हैं वे प्रमाण, प्रत्यक्ष अनुमान २

आगम ३ उपमान ४ अर्थापत्ति ५ अभाव ६ इसप्रकार हैं बस; सौगत आदिके नम्बरवाले, नम्बर तक सौगत आदिके प्रमाण समझना चाहिए। इन प्रमाणोंसे व्याप्तिका निर्णय नहीं होसकता है इसका सविस्तर वर्णन दूसरे ग्रन्थोंसे जानना चाहिए।

**फिर भी चार्वाकका कहना है कि प्रत्यक्षसे नहीं तो अनुमानसे परलोक आदिका निषेध कर देवेंगे। उत्तर यह है:—**

**अनुमानादेस्तद्विषयत्वे प्रमाणान्तरत्वम्॥५८॥**

**भावार्थ**—यदि अनुमानसे परलोक आदिका निषेध तथा पर की बुद्धि आदिकी सिद्धि करोगे, तो दूसरा अनुमान-प्रमाण मानना पड़ेगा। तब तो प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण मानना संख्याभास है; यह बिलकुल स्पष्ट होजायगा।

**उसीमें दृष्टान्त देते हैं:—**

**तर्कस्येव व्याप्तिगोचरत्वे प्रमाणान्तरत्वमप्रमाणस्याव्यवस्थापकत्वात्॥ ५९॥**

**भावार्थ**—जैसेकि व्याप्तिका निर्णय करनेके लिये सौगतादिक को एक भिन्न ही तर्क नामका प्रमाण मानना पड़ता है क्योंकि उनके मानेहुए प्रमाण, व्याप्तिका निर्णय नहीं करसकते हैं। जिसको संक्षेपसे पहले कहचुके हैं। यदि कोई कहे कि तर्कको मानकर भी प्रमाण नहीं मानेंगे; किन्तु अप्रमाण मान लेवेंगे। तब तो दूसरा प्रमाण नहीं मानना पड़ेगा; इसलिए दृष्टान्त विषम है? उत्तर यह है, कि "अप्रमाणस्याव्यस्थापकत्वात्" अर्थात् जो स्वयं अप्रमाण (झूँठा) होता है वह ठीक २ पदार्थोंकी व्यवस्था अर्थात् पदार्थोंका निर्णय नहीं करसकता है।

दूसरा हेतु यह है:--

**प्रतिभासभेदस्य च भेदकत्वात् ॥ ६० ॥**

**भाषार्थ**--प्रतिभास भेद ही प्रमाणके भेदोंको सिद्धकरता है अर्थात् जिसने जितने प्रमाण माने हैं उनसे अधिक प्रमाणोंकी सिद्धि के लिए एक विलक्षण प्रतिभास ही साक्षी है।

**भावार्थ**—जिन्होंने २-३-४-५-६ इनमेंसे कोईभी संख्यावाले प्रमाण माने हैं उन सबके लिए व्याप्तिको विषय करनेवाला तर्कप्रमाण, प्रतिभास भेदसे अर्थात् विलक्षण प्रतिभास होनेसे मानना ही पड़ेगा; क्योंकि प्रतिभास भेदसे ही प्रमाणोंका भेद माना जाता है।

इसप्रकार संख्याभासका वर्णन हुआ।

अब प्रमाण-विषयाभासका स्वरूप कहते हैं:—

**विषयाभासः सामान्यं विशेषो द्वयं वा स्वतन्त्रम् ॥ ६१ ॥**

**भाषार्थ**—केवल सामान्य (द्रव्य) को ही अथवा केवल विशेष (पर्याय) को ही अथवा दोनोंरूप पदार्थको मानकरभी स्वतन्त्रतासे एक २ को प्रमाणका विषय मानना, विषयाभास है।

**भावार्थ**—सांख्य, पर्यायरहित केवल द्रव्य (सामान्य) को ही और बौद्ध द्रव्यांश रहित केवल पर्याय (विशेष) को ही प्रमाणका विषय मानते हैं तथा नैयायिक और वैशेषिक सामान्य और विशेष स्वरूप पदार्थको मानकर भी, सामान्य तथा विशेषको एक दूसरेकी सहायता रहित स्वतन्त्रतासे प्रमाणका विषय मानते हैं। परन्तु प्रमाण का विषय ऐसा है नहीं; इसलिए वे सब विषयाभास हैं।

उसीमें हेतु देते हैं:—

**तथाप्रतिभासनात्कार्याकरणाच्च ॥ ६२ ॥**

**भाषार्थ**—क्योंकि केवल सामान्यरूपसे अथवा विशेषरूपसे वस्तुका प्रतिभास ही नहीं होता है तथा केवल सामान्यरूप अथवा केवल विशेषरूप पदार्थसे अर्थक्रिया नहीं होसकती है; इसलिए वे विषयाभास है।

**भावार्थ**—सामान्य-विशेषरूप ही पदार्थका प्रतिभास होता है तथा वैसा ही पदार्थ अपने कार्य (अर्थ-क्रिया) करनेमें समर्थ होता है अन्य, सामान्यरूप अथवा विशेषरूप पदार्थ नहीं; इसलिए वे विषयाभास कहे जाते हैं।

अगर कोई कहे कि, वे पदार्थ (एकान्तरूप पदार्थ) अपना कार्य करसकते हैं; तो हम उनसे पूछते हैं, कि वे स्वयं समर्थ होते हुए कार्य करते हैं? या असमर्थ?। इन दोनों पक्षोंमेंसे पहले समर्थपक्षका खण्डन करते हैं:—

**समर्थस्य करणे सर्वदोत्पत्तिरनपेक्षत्वात्॥६३॥**

**भाषार्थ**—यदि वह पदार्थ समर्थ होता हुआ कार्य करता है तो निरन्तर ही कार्यकी उत्पत्ति होनी चाहिए; क्योंकि वह दूसरे किसी की अपेक्षा ही नहीं रखता है जिससे कि कार्य करनेमें रुक जाय।

**भावार्थ**—जो स्वयं समर्थ होता है वह अपने कार्यमें किसीकी मदद नहीं चाहता है; क्योंकि मददकी जरूरत उसीको होती है जो समर्थ नहीं होता है; इसलिए उसको निरन्तर कार्यकरना चाहिए।

यदि यह कहो कि सहकारी कारणोंके मिलजाने परही वह ( पदार्थ ) कार्य करता है तो:—

**परापेक्षणे परिणामित्वमन्यथा तदभावात्॥६४॥**

**भाषार्थ**—दूसर पदार्थोंकी अपेक्षा रखनेसे वह परिणामी माना जायगा; क्योंकि परिणामीपनेके बिना यह हो ही नहीं सकता है, कि एकाकी तो कार्य न करें और मिलकर कार्य करें।

**भावार्थ**—जो पहले कार्य नहीं करता था वह यदि किन्हीं कारणोंके मिलने पर कार्य करने लगजाय; तो यही कहना होगा, कि यह कार्यरूप परिणत होगया है अर्थात् पहले कार्यरूप परिणत नहीं था और अब होगया है, बस; इसीको परिणामीपना कहते हैं।

अब दूसरे असमर्थपक्षका खण्डन करते हैं:—

**स्वयमसमर्थस्याकारकत्वात्पूर्ववत् ॥६५॥**

**भाषार्थ**—जो स्वयं असमर्थ है वह कार्योंको कर ही नहीं सकता है क्योंकि वह कार्य करनेवाला नहीं है, जैसे उसी की पहली अवस्था ( हालत )।

**भावार्थ**—जो स्वयं असमर्थ है वह सौ सहकारि मिलने पर भी किसी कार्यको नहीं कर सकता है।

इसप्रकार विषयाभासका वर्णन हुआ।

अब फलाभासका वर्णन करते हैं:—

**फलाभासं प्रमाणादभिन्नं भिन्नमेववा ॥६६॥**

**भाषार्थ**—प्रमाणसे फल ( अज्ञानकी निवृत्ति ) को सर्वथा भिन्न ही तथा सर्वथा अभिन्न ही मानना, फलाभास है।

**अब पहले सर्वथा अभेदपक्षमें दूषण दिखाते हैं:—**

**अभेदे तद्व्यवहारानुपपत्तेः ॥ ६७ ॥**

**भाषार्थ**—यदि प्रमाणसे फल सर्वथा अभिन्न ही माना जायगा; तो यह प्रमाण है तथा यह फल है, इसप्रकार भिन्न व्यवहार नहीं बन सकेगा।

**यदि कहो कि हम ( बौद्ध ) कल्पनासे प्रमाण और फल का व्यवहार कर लेवेंगे, सो भी नहीं बन सकता है:—**

**व्यावृत्यापि न तत्कल्पना फलान्तराद्व्यावृत्याऽफलत्वप्रसंगात् ॥ ६८ ॥**

**भाषार्थ**—अफलकी व्यावृत्तिसे भी, फलकी कल्पना नहीं होसकती है; क्योंकि जिसप्रकार अफलकी व्यावृत्तिसे फलकी कल्पना होगी, उसीप्रकार दूसरे समान जातिवाले फलकी व्यवृत्तिसे अफल की ही कल्पना क्यों न हो जायगी ?

**भावार्थ**—कल्पनामात्रसे फल व्यवहार नहीं होसकता है।

**उसीमें दृष्टान्त देते हैं:—**

**प्रमाणान्तराद्व्यावृत्येवाप्रमाणत्वस्य ॥ ६९ ॥**

**भाषार्थ**—।जिसप्रकार दूसरे समान जातिवाले प्रमाणकी व्यावृत्तिसे अप्रमाणता माननी पड़ती है।

**भावार्थ**—बौद्ध, अप्रमाणसे व्यावृत्तिरुप प्रमाणको मानते है वहां पर यह दोष उपस्थित होता है कि जिसतरह अप्रमाणकी व्यावृत्तिसे प्रमाण कहना चाहते हो उसीतरह दूसरे प्रमाणों

की व्यावृत्तिसे अप्रमाण भी क्यों नहीं कह देते, बस, इसीका दृष्टान्त यहां दे दिया है।

**इन दोषोंके दूर करनेके लिये भेदपक्ष मानना चाहिये। सो ही कहते हैं:—**

**तस्माद्वास्तवो भेदः ॥ ७० ॥**

**भाषार्थ**—इसलिये प्रमाण और फलमें वास्तव भेद है।

**यहां नैयायिक कहता है कि फिर सर्वथा भेद ही मान लेना चाहिये। उसके उत्तरमें आचार्य कहते हैं:—**

**भेदे त्वात्मान्तरवत्तदनुपपत्तेः ॥ ७१ ॥**

**भाषार्थ**—सर्वथा भेद पक्षमें अर्थात् प्रमाणसे फलको सर्वथा भिन्न मानने में यह दोष आता है कि जिसतरह दूसरी आत्माके प्रमाणका फल, वैसे ही हमारी आत्माके प्रमाणका फल, दोनों बराबर ही हो जाँयगे। फिर वह फल, हमारे प्रमाण का है और दूसरेकी आत्माके प्रमाणका नहीं; यह कैसे हो सकता है। कहनेका प्रयोजन यह है कि दूसरी आत्माके प्रमाणका फल जैसे हमारी आत्माके प्रमाणका फल नहीं कहलाता है उसीतरह सर्वथा भिन्न होनेसे हमारी आत्माके प्रमाणका फलभी हमारा नहीं कहलावेगा।

**भावार्थ**—सर्वथा भेदमें यह नहीं हो सकता है कि यह अमुक का है क्योंकि ऐसा किसी न किसी सम्बन्ध होने परही होता है, नहीं तो सह्याचलपर्वतका विंध्याचलपर्वत भी क्यों न कहा जायगा।

**फिर भी नैयायिक कहता है कि जिस आत्मामें प्रमाण**

समवायसम्बन्धसे रहेगा, उसीमें फलभी समवायसे रहेगा; तब तो समवायरूप प्रत्यासत्ति (सम्बन्ध) से इस प्रमाणका यह फल है ऐसी व्यवस्था होजायगी। आचार्य उत्तर देते हैं:—

**समवायेऽतिप्रसङ्गः ॥ ७२ ॥**

**भाषार्थ**—यदि समवाय मान कर दोष वारण करोगे; तो अतिप्रसंग होजायगा अर्थात् तुम्हारे यहां समवाय नित्य और व्यापक पदार्थ माना गया है फिर उससे यह निर्णय कैसे होगा, कि इसी आत्मामें यह प्रमाण अथवा फल, समवायसम्बन्धसे रहता है दूसरी आत्मामें नहीं ?

**भावार्थ**—जब समवाय नित्य और व्यापक है अर्थात् हमेशह और सब जगह रहता है, तो उससे यह निर्णय नहीं होसकता, कि अमुक आत्माके प्रमाणका यह फल है अन्यका नहीं।

**अब अपने पक्षके साधनकी तथा परके पक्षमें दूषण देनेकी व्यवस्थाको दिखाते हैं:—**

**प्रमाणतदाभासौ दुष्टतयोद्भावितौ परिहृतापरिहृतदोषौ वादिनः साधनतदाभासौ प्रतिवादिनो-दूषणभूषणे च ॥ ७३ ॥**

**भाषार्थ**—वादीने प्रमाण बोला, उसका प्रतिवादीने दुष्टतासे उद्भावन कर दिया; पीछे यदि वादीने परिहार कर दिया तो वादीके लिए वह साधन हो जायगा और प्रतिवादीके लिए दूषण हो जायगा। और जब वादीने प्रमाणाभास बोला, उसका प्रतिवादीने दुष्टतासे उद्भावन कर दिया और फिर यदि वादीने उसका

परिहार नहीं कर पाया तो वादीके लिए वह साधनाभास हो जायगा और प्रतिवादीके लिए भूषण हो जायगा ।

**भावार्थ**—जो अपने पक्ष पर आए हुए दूषणोंका परिहार करके अपने पक्षको सिद्ध कर देगा उसीकी विजय होगी और दूसरे का पराजय होगा । अपने पक्षको सिद्ध कर लेना और परके पक्षमें दूषण दे देना, यही प्रमाण और प्रमाणाभास जाननेका फल है ।

**प्रमाणकी परीक्षा करके अब यह दिखाते हैं कि नयादि तत्वोंका स्वरूप दूसरे ग्रन्थोंमें कहा है:—**

**सम्भवदन्यद्विचारणीयम् ॥ ७४ ॥**

**भावार्थ**—प्रमाणसे भिन्न, नयादि तत्वोंका स्वरूप दूसरे शास्त्रोंसे जानना चाहिये । मूल नय दो हैं एक द्रव्यार्थिक दूसरा पर्यायार्थिक । उनमें भी द्रव्यार्थिकनय के तीन भेद हैं । नैगम, संग्रह और व्यवहार । पर्यायार्थिकनयके चार भेद हैं । ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत ।

## अन्तिम परिच्छेदका सारांश ।

इस परिच्छेदमें प्रमाणाभास, प्रत्यक्षाभास, परोक्षाभास, स्मरणाभास, प्रत्यभिज्ञानभास, तर्काभास और अनुमानाभासके भेद, पक्षाभास, हेत्वाभास, दृष्टान्ताभास, बालप्रयोगाभास तथा आगमाभास और प्रमाण-संख्याभास, प्रमाणविषयाभास, तथा प्रमाणफलाभासका वर्णन है । यहां आभास नाम झूठे का जानना चाहिये । पीछे जिनका निर्णय हो चुका है वे प्रमाण सच्चे हैं क्योंकि उनमें कोई दोष नहीं आता

है और इनमें दोष उपस्थित होते हैं इसलिये ये झूंठे हैं।

इसप्रकार आभासोंका वर्णन समाप्त हुआ।

इति षष्ठः परिच्छेदः।

---

## सूत्रकारका अन्तिम वक्तव्यः—

**परीक्षामुखमादर्शं, हेयोपादेयतत्त्वयोः।**
**संविदे मादृशो बालः परीक्षादक्षवद्व्यधाम् ॥१॥**

**भाषार्थ**—जिसतरह परीक्षा करनेमें कुशल पुरुष, अपने प्रारम्भ किए हुये कार्यको पूरा करके ही छोड़ते हैं उसीतरह अपने सारखे मन्दबुद्धि बालकोंको हेय (त्यागने योग्य) और उपादेय (ग्रहण करने योग्य) पदार्थोंका ज्ञान करानेके लिये दर्पणके समान, इस परीक्षामुख ग्रन्थको शुरू करके मैंने पूराकिया है।

**भावार्थ**—जिसतरह दर्पण, भूषणोंसे मण्डित पुरुषकी सुन्दरता और विरूपताको सूचित कर देता है उसीतरह यह पदार्थ छोड़ने योग्य है तथा यह ग्रहण करने योग्य है, इसप्रकार यह ग्रन्थ भी बतला देता है। इसलिये इसको दर्पण की उपमा दी गई है।

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

Printed by Pandya Gulab Shankar, at the Tara Printing Works, Benares.

तरङ्ग सागर ! तरङ्ग सागर !!

( सचित्र )

## मासिक पत्र

जिसमें उपन्यासिक, ऐतिहासिक, जासूस, हास्य, नाटकीय-विषय कौतूहल युक्त डिमाई ८ पेजी साइज़ ( आकार ) का चिकने काग़ज़ पर सुंदर बम्बई अक्षरों में तारा प्रिंटिंग वर्क्स से महीने २ प्रकाशित होता है। यह पाठकों के लिए अति रोचक है। इस संख्या में अमीर-अली ठग का सच्चा वृत्तान्त और सलीमा बेग़म का अस्ली दास्तान पढ़नेही योग्य है। वार्षिक मूल्य डाक व्यय सहित २) रुपया।

एस. सी. बेनरजी, म्यानेजर,

तारा प्रिन्टिंग वर्क्स, बनारस सिटी।

परीक्षामुख पुस्तक, मिलनेके पते :—

(१) घनश्यामदास जैन,

स्याद्वाद महाविद्यालय, काशी।

(२) बंशीधर जैन, मास्टर,

बुढ़वार ( ललितपुर )

आप्तपरीक्षाभाषा भी हमारे यहां मिलती है।-)